आचार्य कुमुदचंद्र रचित

कल्याण मन्दिर स्तोत्र

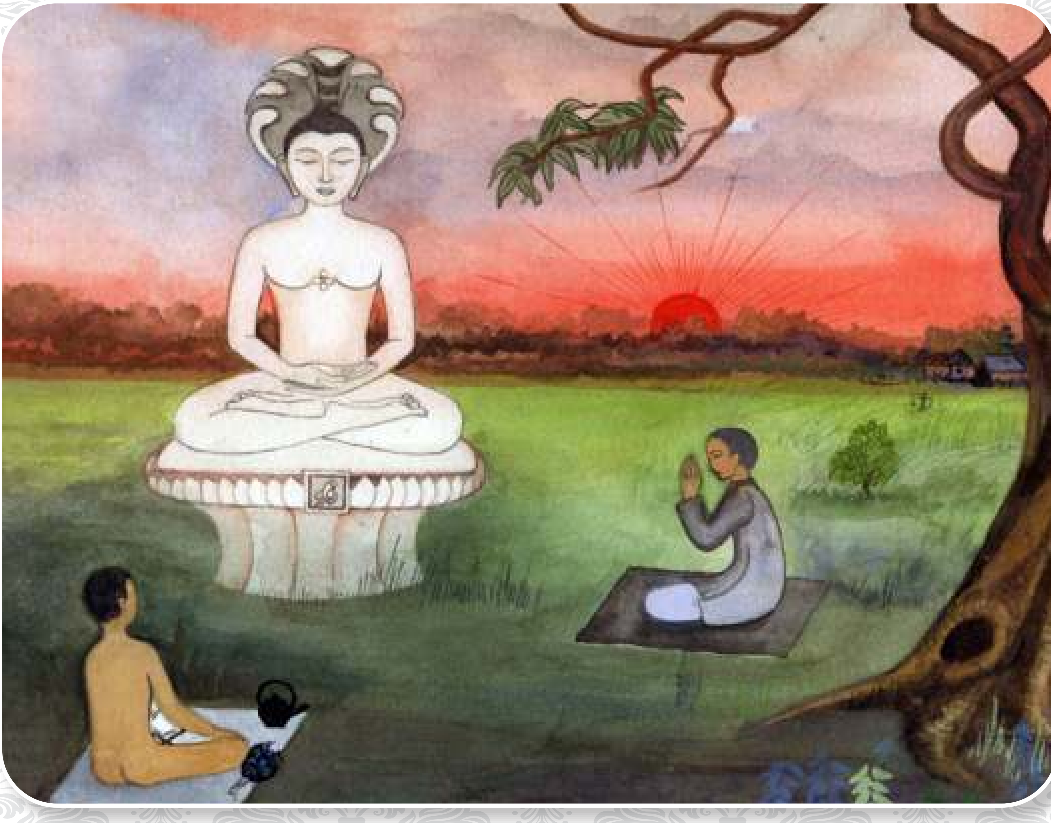

अनुवाद

आचार्य विभवसागर

संकलन

सिद्धश्री माताजी

आचार्य कुमुदचंद्र रचित

कल्याण मन्दिर स्तोत्र

अनुवाद

आचार्य विभवसागर

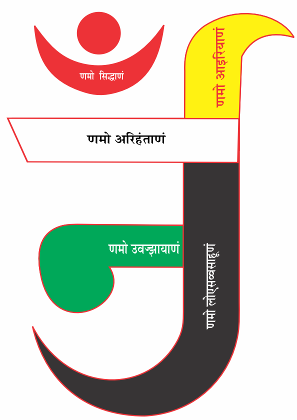

संकलन

सिद्धश्री माताजी

मूलकृति : कल्याण मंदिर स्तोत्र
रचयिता : आचार्य कुमुदचंद्र
आशीर्वाद : गणाचार्य विरागसागर
अनुवाद : श्रमणाचार्य विभवसागर
संकलन : क्षु. सिद्धश्री माताजी
अन्वयार्थ : पं. पन्नालाल साहित्याचार्य
भावानुवाद : श्रमणाचार्य विभवसागर
विश्लेषण : ब्र. प्रदीप शास्त्री ''पीयूष''
चित्र/यंत्र : अज्ञात
चित्र संयोजन : रश्मि जैन पं. अखिलेश शास्त्री
यंत्र संयोजन : श्रमण आचारसागर
संस्करण : नवम, संवर्द्धित
मूल्य : .... (पुनः प्रकाशन हेतु)
पुण्यार्जक : पुण्यार्जक परिवार
प्राप्ति स्थल : 1. सौरभ जैन, संस्थापक अध्यक्ष (श्रमण श्रुत सेवा संस्थान) मो.: 9829178749
पर्सनलिटी डेवलपमेंट गुरु व मोटिवेशनल स्पीकर, वर्ल्ड रिकार्ड होल्डर
66–ए, अर्जुन नगर, साउथ जयपुर – 302015
2. सन्मति जैन, जैन चश्मा घर, परकोटा, सागर (म.प्र.) मो.: 9425462997
3. पुण्यार्जक परिवार
मुद्रक : विकास ऑफसेट प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स
45, सेक्टर–एफ, औद्योगिक क्षेत्र, गोविन्दपुरा, भोपाल (म.प्र.)
फोन : 0755–2601952, 9425005624

आशीर्वाद

आइरिय पसायेण
विज्जा मंता य सिज्झंति।

आचार्य देव के प्रसाद से विद्या और मंत्रों की सिद्धि होती है। तथा गुरु भक्ति और संयम के प्रभाव से आत्मा शीघ्र ही भवसागर पार होती है।

गुरु की प्रसन्नता रूपी अमृत शिष्य के स्वस्थ, आरोग्य, बुद्धि, बोधि, विशुद्धि और आत्मसिद्धि का परम रसायन है। गुरु प्रसाद ही सर्वकार्य साधक सिद्ध मंत्र है।

प्रस्तुत शास्त्र जी! जिन भक्ति में लीन स्वात्म साधिका क्षुल्लिका ह्रीं श्री माताजी एवं जिनवाणी उपासिका, आराधना आराधिका क्षुल्लिका सिद्धश्री माताजी के समर्पण भाव का पावन प्रमाण पत्र है।

आप स्वयं सरस्वती सुता है। आपके संप्रेरक भाव से यह शास्त्र प्रकाशित हो रहा है एतदर्थ शुभाशीर्वाद......।

– आचार्य विभवसागर

प्रस्तावना

– आचार्य विभवसागर

श्री कल्याण मन्दिर स्तोत्र दिगम्बर जैनाचार्य कुमुदचन्द्र अपरनाम सिद्धसेन द्वारा विरचित भक्ति प्रधान सुप्रसिद्ध स्तोत्र है। इस स्तोत्र में इष्ट देव पार्श्वनाथ भगवान का गुणानुराग पूर्वक गुणानुवाद किया है।

"कल्याण मन्दिर" शब्द से ग्रन्थारम्भ होने के कारण इस स्तोत्र का प्रसिद्ध नाम कल्याण मन्दिर स्तोत्र है तथा इसमें स्तुत्य भगवान पार्श्वनाथ के गुणों पर भक्ति प्रकाश डाला गया अतः इस का अपर नाम पार्श्वनाथ स्तोत्र भी है।

यह स्तोत्र दिगम्बर जैनाम्नाय का प्राचीन एवं प्रमाणित स्तोत्र है। क्योंकि इसमें अष्ट प्रातिहार्य का आगमिक रीति से बड़ा रोचक सुन्दर वर्णन है। दिगम्बर शास्त्र में ही अष्ट प्रातिहार्य की मान्यता है जबकि श्वेताम्बर मान्यता में चार प्रातिहार्य ही मान्य हैं।

मुनि पार्श्वनाथ पर घोर उपसर्ग का होना भी दिगम्बर आम्नाय मानती है। श्वेताम्बर आम्नाय नहीं । इस स्तोत्र के 43 काव्य वसन्ततिलका छन्द में तथा 1 काव्य आर्या छन्द में रचित है। कुल 44 काव्य हैं। यहाँ आपका प्रश्न हो सकता है कि चौबीस तीर्थंकर में से स्तोता ने भगवान पार्श्वनाथ को ही क्यों चुना ? प्रश्न का समाधान है कि उपसर्ग विजेता होने के कारण पार्श्वनाथ लोक पुरुष के रूप असाधारण महिमा मण्डित हैं।

भगवान पार्श्वनाथ का जीवन दुः ख में धैर्य, सुख में वैराग्य, जीवन–मरण में समता, परिषह में क्षमता, साधना में दृढ़ता, उपसर्गों में अडिगता, बाधाओं में सहनशीलता, निंदा और प्रशंसाओं में आत्मलीनता, की प्रवीणता के साथ ध्यान की पराकाष्ठा को स्पर्श करता हुआ पर निरपेक्ष स्वभाव सापेक्ष आत्माभिमुख रहता हुआ जीवन विकास का मंगल पथ प्रदर्शन करता है।

निमित्त को दोष न देकर अपने उपादान को सम्हालने की सर्वश्रेष्ठतम कला यदि किसी महापुरुष से सीखने मिलती है तो वह एक मात्र परम आराध्य तीर्थंकर पार्श्वनाथ ही हैं। यही कारण है कि स्तुतिकार ने अपना स्तुत्य केन्द्र भगवान पार्श्वनाथ को माना।

जगत को वही पुरुष आदर्श महापुरुष हो सकता है जिसका व्यक्तित्व कृतित्व प्रेरणास्पद हो। प्रगतिपथ का दिग्दर्शक हो। आत्मशाांति का संस्थापक हो। तथा विश्व कल्याण का उपदेशक हो। भगवान पार्श्वनाथ इन सब अनंतगुणों के आधार हैं अतः स्तुति के परम पात्र है।

सहो तो ऐसा सहो कि साधना बन जाये।
कहो तो ऐसा कहो कि आराधना बन जाये ।।

इस पवित्र संदेश का प्रदाता आपका जीवन है। सच है महापुरुष जीभ से कम, जीवन से ज्यादा बोलते हैं।

जैसे सोना क्रमशः शुद्धता को प्रकट करता हे। वैसे ही महापुरुषों का जीवन सोलह तापों पर तप्तायमान स्वर्ण की तरह शुद्धता को प्रकट कर स्वभावस्थ हो जाता है। परम निर्विकारी सिद्ध-स्वरूपी, चैतन्य चिद्रूपी, अरस अरूपी परमात्मा पार्श्वनाथ का यह स्तोत्र हमारा परम प्रिय स्तोत्र रहा। मैंने इस स्तोत्र के दो अनुवाद भी किए हैं।

संप्रति हमारी दीक्षिता शिष्या क्षुल्लिका सिद्धश्री माताजी ने ''कल्याण मन्दिर स्तोत्र'' का समीचीन प्रकाशन का भाव संजोया उन्हें हमारा शुभाशीर्वाद श्रुताराधना महायज्ञ में जिन महानुभावों ने दानाहूति प्रदान की उन्हें मंगल आशीर्वाद एवं पाठकों के लिए प्रेरणा....

शुभमस्तु

वीर शासन पर्व
2018, मुंबई

तीर्थंकर पार्श्वनाथ परिचय

– श्रमण शुद्धात्मसागर जी

पूर्व के दसवें भव में आप विश्वभूति ब्राह्मण के घर में मरुभूति नामक पुत्र थे, नवे भव में वज्रघोष नामक हाथी हुए, आठवें भव में सहस्रार स्वर्ग में देव हुए, सातवें भव में रश्मिवेग विद्याधर हुए, छटें भव में अच्युत स्वर्ग में देव हुए, पांचवे भव में वज्रनाभि नाम के चक्रवर्ती हुए, चौथे भव में मध्यम ग्रैवेयक में अहमिन्द्र हुए, तीसरे भव में आनन्द नामक राजा हुए, दूसरे अर्थात् तीर्थंकर के पूर्व वाले भव में 'प्राणत स्वर्ग' में इन्द्र हुए, वर्तमान भव में इस चौबीसी के तेईसवे तीर्थंकर हुए। आप राजा विश्वसेन के पुत्र थे। आपकी माता का नाम ब्राह्मी था। आप बालब्रह्मचारी थे। आपने विवाह नहीं किया। जातिस्मरण हो जाने पर पौष कृष्णा एकादशी के दिन आपको संसार से वैराग्य हो गया। आपके साथ तीन सौ राजाओं ने दीक्षा ली। आश्रमकेस नामक स्थान पर कमठ के द्वारा उपसर्ग किये जाने पर चैत्र कृष्णा चतुर्थी को केवलज्ञान प्राप्त कर समवशरण में भव्य जीवों को उपदेश देते हुए धर्म तीर्थ का प्रवर्तन किया तथा अन्त में श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन सम्मेदशिखर पर्वत से मोक्ष प्राप्त किया।

आचार्य कुमुदचन्द्र (सिद्धसेन) परिचय

– गणिनी आर्यिका सुपार्श्वमति माताजी

कवि और दार्शनिक के रूप में सिद्धसेन प्रसिद्ध हैं । आचार्य जिनसेन ने अपने आदिपुराण में सिद्धसेन को कवि और वादिगजकेसरी कहा है।

कवयः सिद्धसेनाद्या, वयं च कवयो मताः।
मणयः पद्मरागाद्या, ननु काचोऽपि मेचकः।।39।।
प्रवादिकरियूथानां, केसरी नयकेसरः।
सिद्धसेनकविर्जीया, द्विकल्पनखरांकुरः।।42।।

पूर्वकाल में सिद्धसेनादि अनेक कवि हुए हैं और मैं भी कवि हूँ। पर दोनों में उतना ही अन्तर है, जितना पद्मरागमणि और काचमणि में होता है।

वे सिद्धसेन कवि जयवन्त हों जो प्रवादीरूपी हाथियों के झुण्ड के लिए सिंह के समान है। नैगम नयादि जिनके केशर तथा अस्ति–नास्ति आदि विकल्प ही तीक्ष्ण नाखून थे।

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने शब्दानुशासन में "उत्कृष्टेऽनूपेन" (2।2।39) सूत्र के उदाहरण में 'अनुसिद्धसेन कवयः' सिद्धसेन कवि के नीचे सारे कवि हैं, ऐसा कहा है।

जैनेन्द्र व्याकरण के 'उपेन' (1।4।16) सूत्र की वृत्ति में अभयनन्दी ने 'उपसिद्धसेनं वैयाकरणाः' उदाहरण द्वारा सिद्धसेन को श्रेष्ठ वैयाकरण बतलाया है।

प्रथम जिनसेन ने अपने हरिवंश पुराण में सिद्धसेन की सूक्तियों को तीर्थंकर वृषभदेव की सूक्तियों (वचनों) के समान सारयुक्त एवं महत्त्वपूर्ण बताया है। उन्होंने लिखा है–

जगत्प्रसिद्धबोधस्य वृषभस्येव निष्तुषाः।
बोधयन्ति सतां बुद्धिं सिद्धसेनस्य सूक्तयः।

जिनका श्रेष्ठज्ञान संसार में प्रसिद्ध है ऐसे श्री सिद्धसेन की निर्मल सूक्तियाँ श्री ऋषभ जिनेन्द्र की सूक्तियों के समान सत्पुरुषों की बुद्धि को सदा विकसित करती हैं।

सिद्धसेन का जीवन परिचय

'प्रभावक चरित' में सिद्धसेन के जीवन चरित्र सम्बन्धी कुछ तथ्य उपलब्ध हैं । उनके अनुसार उज्जयिनी नगरी में कात्यायन गोत्रीय देवर्षि नामक ब्राह्मण की धर्मपत्नी देवश्री के उदर से इनकी उत्पत्ति हुई थी। युवावस्था में ये प्रतिभाशाली मेधावी विद्वान थे। वृद्धवादी नामक मुनिराज उज्जयिनी पधारे थे तब उनके साथ सिद्धसेन का शास्त्रार्थ हुआ। उनकी चर्या और ज्ञान से प्रभावित होकर सिद्धसेन ने उनका शिष्यत्व स्वीकार कर लिया। गुरु ने दीक्षा देकर उनका नाम कुमुदचन्द्र रखा। हरिभद्र के 'पंचवस्तु' नामक ग्रन्थ में 'दिवाकर' विशेषण भी उपलब्ध होता है। उन्होंने लिखा है कि–

आयरिय सिद्धसेणेण सम्मइए पइट्ठि अजसेणं।
दूसमणिसा–दिवागर कप्पंतणओ तदक्खेणं।।

दुषम कालरूपी रात्रि के लिए सूर्य के समान होने से सिद्धसेन 'दिवाकर' इस नाम से प्रसिद्ध हुए थे।'सन्मति टीका' के प्रारम्भ में अभयदेव सूरि (12वीं शती) ने भी इन्हें दिवाकर लिखा है और दुःषमा काल श्रमण संघ की अवचूरि में सिद्धसेन को 'दिवाकर' के स्थान पर 'प्रभावक' लिखा है और इनके गुरु का नाम धर्माचार्य बताया है।

इनके सम्बन्ध में 'पट्टावली सारोद्धार' में लिखा है–

तथा सिद्धसेन दिवाकरोऽपि जातो येनोज्जयिन्यां महाकालप्रासादे रुद्रलिंगस्फोटनं कृत्वा कल्याणमन्दिरस्तवनेन श्रीपार्श्वनाथबिम्बं प्रकटीकृत्य श्रीविक्रमादित्य राजापि प्रबोधितः श्री वीर निर्वाणात् सप्ततिवर्षाधिक शत चतुष्टये विक्रमे श्रीविक्रमादित्यराज्यं सञ्जातं।

श्री वीर निर्वाण के चार सौ सत्तर वर्ष व्यतीत होने पर विक्रमादित्य राजा हुआ था। उस राजा की सभा में सिद्धसेनदिवाकर (कुमुदचन्द्र) ने उज्जयिनी नगरी में महाकाल के मन्दिर में 'कल्याणमन्दिर स्तोत्र' द्वारा रुद्र लिंग का स्फोटन कर श्रीपार्श्वनाथ का बिम्ब प्रकट किया था और विक्रमादित्य राजा को प्रबोधित किया था। दुःषमाकाल श्रमणसंघ की अवचूरि में लिखा है कि वृद्धवादी–वाद में लीन सिद्धसेन दिवाकर ने पार्श्वनाथ बिम्ब प्रकट कर विक्रमादित्य को संबोधित किया था, सम्वत् आदि पूर्वोक्त हैं।

गुरु पट्टावली में भी इसी तथ्य की पुनरावृत्ति हुई है– तथा श्रीसिद्धसेन–दिवाकरेणोज्जयिनी नगर्यां महाकालप्रासादे लिंगस्फोटनं विधाय स्तुत्या एकादशकाव्ये श्री पार्श्वनाथबिम्बं प्रकटीकृतं कल्याणमन्दिरस्तोत्रं कृतं।

सिद्धसेन दिवाकर ने उज्जयिनी नगरी में 'कल्याणमन्दिर' नामक स्तोत्र के 11 वें काव्य के द्वारा श्री पार्श्वनाथ के बिम्ब को प्रकट कर महाकाल प्रासाद में कल्याणमन्दिर स्तोत्र की रचना की।

यह वर्णन श्वेताम्बर पट्टावलियों में है। परन्तु इसी प्रकार, श्वेताम्बर प्रबन्धों और पट्टावलियों के समान सिद्धसेन के साथ उज्जयिनी के महाकाल मन्दिर में घटित घटना का उल्लेख दिगम्बर सम्प्रदाय में भी पाया जाता है। सेनगण की पट्टावली में निम्न वाक्य में कहा है– स्वस्तिश्रीमदुज्जयिनी महाकाल–संस्थापनमहाकाललिंगमहीधरवाग् वज्रदण्डविष्ट्याविष्कृत श्री पार्श्व तीर्थेश्वर प्रति बिम्ब श्री सिद्धसेन भट्टारकाणाम्। श्री उज्जयिनी नगरी में महाकाल संस्थापित महाकाल लिंगरूपी महीधर (पर्वत) को वचनरूपी वज्र के द्वारा चूर्णकर श्रीपार्श्वतीर्थंकर के बिम्ब को सिद्धसेन भट्टारक ने प्रकट किया।

दिगम्बर–श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायों में सिद्धसेन, सिद्धसेनप्रभावक, सिद्धसेन दिवाकर नाम से अनेक आचार्य वा मुनिराज हुए हैं। इनका ठीक–ठीक निर्णय करना हमारी शक्ति के बाहर है। परन्तु यह निश्चित है कि 'सन्मतिसूत्र' और 'कल्याण मन्दिर' के रचयिता सिद्धसेन दिगम्बर सम्प्रदाय में हुए हैं। इनके साथ दिवाकर विशेषण नहीं है। दिवाकर विशेषण प्रायकर श्वेताम्बर सम्प्रदाय में हुए

सिद्धसेन के साथ पाया जाता है जिनकी द्वात्रिंशिकाएँ, न्यायावतार आदि रचनाएँ हैं। परन्तु दिगम्बर सम्प्रदाय में उनके द्वारा रचित दो ग्रन्थ उपलब्ध हैं सन्मतिसूत्र और कल्याणमन्दिर।

सन्मति सूत्र

प्राकृत भाषा में लिखित न्याय और दर्शन का यह अनूठा ग्रन्थ है।

आचार्यदेव ने इस ग्रन्थ में नयों का सांगोपांग विवेचन कर जैन न्याय तथा वस्तु की सिद्धि की सुदृढ़ पद्धति का आरम्भ किया है। अनेक धर्मात्मक वस्तु के कथन करने की प्रक्रिया को नय कहते हैं और विभिन्न एकान्तदर्शनों का खण्डन कर उन दर्शनों का विभिन्न नयों में अन्तर्भाव किया है। इस ग्रन्थ में तीन काण्ड हैं, प्रथम नय काण्ड है। द्वितीय जीव काण्ड या ज्ञान काण्ड है और तृतीय सामान्य विशेष काण्ड वा ज्ञेय काण्ड है। प्रथम काण्ड में चौपन, द्वितीय काण्ड में तैयालीस और तृतीय काण्ड में उनहत्तर गाथाएँ हैं। इस प्रकार कुल एक सौ छासठ गाथाओं में यह ग्रन्थ समाप्त हुआ है।

प्रथम काण्ड में द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नय का कथन किया है, क्योंकि तीर्थंकर–वचनों के सामान्य और विशेष धर्म के मूलप्रतिपादक ये दोनों नय ही हैं। शेष नयों का विकास और निकास इन्हीं दो नयों से हुआ है, इसलिए इस ग्रन्थ में लिखा है–

तित्थयर वयण संगह–विसेस पत्थार मूल वागरणी।
दव्वट्ठिओ य पज्जवणओ य सेसा वियप्पासिं।।
दव्वट्ठिय नय पयडी सुद्धा संगह परूवणा विसओ।
पडिरूवे पुण वयणत्थ निच्छओ तस्स ववहारो।।

तीर्थंकर के वचनों की सामान्य एवं विशेषरूप राशियों के मूल प्रतिपादक द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नय हैं। अर्थात् वस्तु का सामान्य अभेद रूप कथन करने वाला द्रव्यार्थिक नय है और विशेष पर्याय (भेद) रूप कथन करने वाला पर्यायार्थिक नय है। शेष नय भेद और अभेद को विषय करने के कारण इन्हीं दोनों नयों के उपभेद हैं। द्रव्यार्थिक नय की शुद्ध प्रकृति संग्रह की प्ररूपणा का विषय है और प्रत्येक वस्तु के सम्बन्ध में होने वाला शब्दार्थ–निश्चय संग्रह का व्यवहार है। अर्थात् अभेदरूप से संगृहीत वस्तु को भेद करके ग्रहण करना व्यवहार नय है।

व्यवहार नयानुसारी जो वचन विभाग है, जो पर्यायार्थिक नय का मूल आधार है, वह ऋजुसूत्र नय है। यह नय एक समय की अर्थपर्याय का वाचक है। द्रव्यकृत भेद के कर्त्ता नैगम, संग्रह और व्यवहार नय द्रव्यार्थिक नय के भेद कहे जाते हैं और कालकृत भेद को ग्रहण करने वाले होने से ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ और एवंभूत नय पर्यायार्थिव, नय कहलाते हैं। ऋजुसूत्र नय से काल–कृत भेद प्रारम्भ होता है। अतः पर्यायार्थिक नय कहलाता है। शब्दनय, समभिरूढ़ नय और एवंभूत नय उत्तरोत्तर सूक्ष्म भेद वाले होने से पर्याय नय के अन्तर्गत हैं। एक ही वस्तु के पर्यायवाची शब्दों के द्वारा कथन करना शब्द नय का कार्य है जैसे इन्द्र, शचीपति, सुरपति आदि अनेक विबुधपति के

पर्यायवाची नाम हैं। शब्द भेद से अर्थ भेद करने वाला समभिरूढ़नय है और अर्थ भेद तात्कालिक क्रिया करने वाले को ग्रहण करने वाला एवंभूत नय है। ये सर्व पर्याय के अन्तर्गत होते हैं।

नाम, स्थापना और द्रव्य ये तीन निक्षेप द्रव्यार्थिक नय के भेद हैं और भाव निक्षेप पर्यायार्थिक नय के अन्तर्गत है। इस प्रकार इस काण्ड में उत्पाद व्यय और ध्रौव्यात्मक वस्तु का निरूपण कर नयों का विवेचन किया है।

मानव जो कुछ भी चिंतन करता है, काय की चेष्टा करता है और वचन के द्वारा कुछ भी कथन करता है वह या तो अभेद की ओर झुकाता है या भेद की ओर। अभेद की दृष्टि से होने वाली मन, वचन, काय की चेष्टा के द्वारा प्रतिपादित वस्तु को संग्रह या सामान्य कहते हैं और भेद की दृष्टि से किये मन, वचन, काय के द्वारा प्रतिपादित वस्तु विशेष कही जाती है। इस प्रकार इस काण्ड में द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयों का विश्लेषण किया गया है।

द्वितीय काण्ड में दर्शन और ज्ञान के स्वरूप का कथन करने के पश्चात् आत्मा के सामान्य विशेषात्मक स्वरूप का निरूपण कर द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नय को घटित किया है। इसी काण्ड में चार ज्ञान के साथ दर्शन का भेदकथन करके केवलज्ञान के साथ दर्शन का अभेद कथन किया है। तृतीय काण्ड में सामान्य–विशेषात्मक वस्तु का कथन किया है अतः इसे ज्ञेय कहा जा सकता है। सामान्य और विशेष न सर्वथा भिन्न हैं और न सर्वथा अभिन्न हैं अपितु भिन्नाभिन्न हैं। आचार्य ने लिखा है–

सामण्ण विसेसो विसेसपक्खे य वयण विणिवेसो।
दव्वपरिणाममण्णं दाएइ तयं च णियमेइ।।
एगंतणिव्विसेसं एयंत विसेसियं च वयमाणो।
दव्वस्स पज्जवे पज्जवा हि दवियं णियत्तेइ।।

सामान्य में विशेषविषयक वचन का और विशेष में सामान्य विषयक वचन का जो प्रयोग होता है वह अनुक्रम से सामान्य–द्रव्य के परिणाम को उससे भिन्नरूप में दिखलाता है और उस विशेष को सामान्य में नियत करता है। अर्थात् सामान्य का कथन विशेष की और विशेष का कथन सामान्य की अपेक्षा करता है। एकान्त निर्विशेष सामान्य का और एकान्त सामन्यरहित विशेष का प्रतिपादन करने वाला द्रव्य की पर्यायों को और द्रव्य को सर्वथा भिन्न बतलाता है परन्तु ये सर्वथा भिन्न हैं नहीं, अपितु कथन का व्यवहार है। व्यवहार ज्ञान–मूलक होता है और व्यवहार की अबाधकता ही ज्ञान की यथार्थता का प्रमाण है। वस्तु का स्वरूप निश्चित करने का एक मात्र साधन यथार्थज्ञान है। वस्तु सामान्य विशेषात्मक है, क्योंकि सामान्य रहित विशेष की और विशेष रहित सामान्य की प्रतीति नहीं हो रही है। सामान्य और विशेष दोनों परस्पर सापेक्ष हैं अर्थात् दोनों का द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव एक ही है। इस काण्ड के अन्त में आचार्य ने भगवान वीतराग के वचन अनेकान्त की भद्रकामना की है।

भद्दं मिच्छादंसण समूहमहयस्य अभयसारस्स।
जिणवयणस्स भगवओ सविग्गसुहाहि गम्मस्स।।

जो मिथ्यादर्शनों के समूह का मथक–परस्पर सापेक्षता संस्थापक है, अमृतसार है और निष्पक्षजनों द्वारा सरलता से ज्ञातव्य है, ऐसा वीतराग जिनेन्द्र भगवान का अनेकान्त रूप वचन सर्व जीवों का कल्याण करता हुआ सदा विद्यमान रहे।

कल्याणमन्दिर स्तोत्र

दूसरी कृति कल्याणमन्दिर है। इसमें 44 पद्य हैं और वसन्ततिलका छन्द है। रचयिता का नाम कुमुदचन्द्र आया है जो दीक्षा के समय किया गया नामकरण है। उन्होंने अन्तिम पद्य में लिखा है–

जननयन कुमुदचन्द्र प्रभास्वराः स्वर्गसम्पदो भुक्त्वा।
ते विगलित मलनिचया अचिरान्मोक्षं प्रपद्यन्ते।।पद्य44।।

इस पद्य में श्लेष द्वारा कवि का नाम अभिव्यक्त किया गया है। इस स्तोत्र में पार्श्वनाथ की स्तुति की गई है। पारसनाथ के प्रति उनकी अटूट भक्ति थी। इसलिए इस स्तोत्र में उन्होंने पारसनाथ के अपूर्व गुणों का कथन किया है और उनका नाम उच्चारण करने से शांति की प्राप्ति होती है, यह स्थापित किया है।

समय निर्णय

सिद्धसेन का समय–निर्णय करना शक्य नहीं है। क्योंकि इनके समय के सम्बन्ध में अनेक मान्यताएँ प्रचलित हैं। एक मान्यता इनको प्रथम शती का विद्वान् स्वीकार करती है और इसके प्रमाण में पट्टावली–समुच्चय में संकलित पट्टावलियों को प्रस्तुत करती है।

द्वितीय मान्यता में सुखलाल जी संघवी के अनुसार सिद्धसेन का समय जैनेन्द्र व्याकरण के रचयिता पूज्यपाद से पूर्व माना गया है। उन्होंने पूज्यपाद के व्याकरणगत ''वेत्तेः सिद्धसेनस्य''5/1/7 सूत्र में निर्दिष्ट सिद्धसेन के मत का निरूपण करते हुए कहा कि अनुपसर्ग और सकर्मक 'विद्' धातु से रेफ का आगमन होता है। इस कथन से सुखलाल संघवी ने सिद्धसेन का समय पूज्यपाद के पूर्व विक्रम की पञ्चम शताब्दी का प्रथम पाद अथवा चतुर्थ शताब्दी का अन्तिमपाद निश्चित किया है।

मुनि जिनविजय जी ने सिद्धसेन का काल वि.सं. 414 माना है। तृतीय मत के प्रवर्त्तक डॉ. हीरालाल जैन हैं। इन्होंने सिद्धसेन को गुप्तकालीन सिद्ध किया है। दिगम्बर सम्प्रदाय में सिद्धसेन को सेनगण का आचार्य माना गया है। अतएव 'सन्मति सूत्र' के कर्त्ता सिद्धसेन का समय समन्तभद्र के पश्चात् और पूज्यपाद के पूर्व या समकालीन माना जा सकता है।

मुख्तार साहब के कथनानुसार सिद्धसेन विक्रम संवत् 666 के पूर्व हुए हैं। आचार्य वीरसेन ने भी धवला और जयधवला में सिद्धसेन के सन्मतिसूत्र के नाम निर्देश पूर्वक उसके वाक्यों को उद्धृत किया है। वीरसेन का समय ईसा की नवमी शती है अतः सिद्धसेन स्पष्टता उनसे पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं। इस प्रकार श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही आम्नायों के अनुसार इनके समय की ठीक–ठीक सिद्धि नहीं होती। सिद्धसेनाचार्य ने जिनधर्म की ध्वजा फहराई, जिनधर्म का उद्योत किया तथा स्याद्वाद के द्वारा वस्तु स्वरूप को सिद्ध किया, उनके चरणों में मेरा बारम्बार नमस्कार हो।

'आमुख'

प्रस्तुत कल्याण मन्दिर स्तोत्र भाव गर्भ भक्ति विषय की एक श्रेष्ठ रचना है। इसके भाव व भाषा दोनों बड़े ही विशद हैं। इसमें भक्ति की जो धारा प्रवाहित है वह अनूठी है। अनुश्रुतियों तथा स्तोत्र के अन्तः परीक्षण से ज्ञात होता है कि इसकी रचना उस समय हुई है जब आचार्य महोदय पर कोई विपत्ति आई हुई थी। स्पष्ट है कि जैनाचार्यों ने जो स्तवन रचे हैं वे उन पर संकट आने पर जिनशासन का प्रभाव और चमत्कार दिखाने के लिए ही रचे हैं।

आचार्य कुमुदचन्द्र पर भी किसी संकट के आने पर उनके द्वारा इस स्तोत्र की रचना हुई है। कहा जाता है कि इन्होंने इस स्तोत्र द्वारा भगवान पार्श्वनाथ का स्तवन करके एक स्तम्भ से उनकी प्रतिमा प्रकटित की थी और जिन शासन का प्रभाव एवं चमत्कार दिखाया था।

इस स्तोत्र का दूसरा नाम 'पार्श्वनाथ स्तोत्र' भी है। जैसा कि इसके दूसरे पद्य में प्रयुक्त 'कमठ–स्मय–धूमकेतुः' नाम से प्रकट है, जो भगवान पार्श्वनाथ के लिए आया है। 'कल्याण मन्दिर' शब्द से प्रारम्भ होने के कारण इसे कल्याण मन्दिर स्तोत्र कहा जाता है।

कल्याण मन्दिर स्तोत्र की एक चमत्कारी घटना है, उसे इस कहानी से परिलक्षित किया है। इसके कर्ता का सम्बन्ध इस कथा से भली भांति प्रकट होता है।

एक समय प्रातःकाल की बेला में, शिवालयों के अन्दर शंखनाद घंटानाद आरम्भ हो गये थे। उनके भक्तगण अपनी चोटी में गांठ लगाये नर्मदा तट की ओर जा रहे थे, उन भक्तों में से एक भक्त नित्य 'गायत्री' का पाठ करता हुआ चला जा रहा था। उधर से आचार्यश्री आ रहे थे, भक्त ने कहा 'अरे जरा दूर से चलो' क्या दिखता नहीं है, कि मैं ब्राह्मण हूँ। परन्तु आचार्यश्री ने इस ब्राह्मण की श्रद्धा की परीक्षा ली। फिर क्या था? विवाद प्रारम्भ हो गया। यह कट्टर ब्राह्मण वेद पारंगत कूट तार्किक था। 'एको ब्रह्म' से लेकर सहस्रों श्लोक जिह्वा पर नाच उठे। आचार्यश्री ने भी व्यवहार धर्म का स्वरूप कहा। उसी समय एक ग्वाला वहाँ आ पहुँचा 'ब्रह्म सत्यं जगमिथ्या'...। आदि कहकर ब्राह्मण ग्वाले से कहता है, देखो भाई जैसे आपकी गायें

यदि वे कहीं चली जायें तो आपका क्या गया? क्योंकि आप उन्हें अपनी मानते ही नहीं। यह कहकर वृद्धवादी आचार्यश्री ने ग्वाले की बुद्धि के अनुसार व्यवहार की बात करके अपना पक्ष प्रकट किया।

ग्वाले ने व्यावहारिक दृष्टान्तों के कारण शीघ्र ही आचार्यश्री के पक्ष का ही समर्थन किया। तो भी ब्राह्मण संतुष्ट नहीं हुआ। विवाद आगे बढ़ा और राजा के पास दोनों पहुँचे राजा ने भी आचार्यश्री के व्यवहारिकता के कारण उनके ही पक्ष का निर्णय दिया। निदान ब्राह्मण को उनका शिष्यत्व स्वीकार करना ही पड़ा और समयानुसार ये 'कुमुदचन्द्र' नाम से सुसंस्कृत किए गए। ऐसे ही श्रद्धावान विद्वान पुरुष की खोज के लिए आचार्यश्री निकले ही थे।

एक समय राजा विक्रमादित्य एक हाथीं पर आरूढ़ होकर चले जा रहे थे। मार्ग में राजकीय आतंक से निर्भीक एक निस्पृह साधु। राजा शिवभक्त होकर भी सर्व धर्म समभावी था, परीक्षा के हेतु मन ही मन नमस्कार साधु को कर ही लिया। बस क्या था! आत्मा का तार आत्मा से मिला और 'धर्मवृद्धिरस्तु' का आशीर्वाद मुख से निकल पड़ा। यह है भक्ति का स्रोत।

राजकीय कार्य से कुमुदचन्द्र जी को चित्तौड़गढ़ जाना पड़ा, मार्ग में श्री पार्श्वनाथ जी का एक जैन मन्दिर देखकर ज्यों ही वे दर्शनार्थ घुसे कि एक स्तम्भ पर उनकी दृष्टि पड़ी। स्तम्भ एक ओर से खुला था। इन्होंने उसे खोलना चाहा, किन्तु सफलता में देर हुई। निदान उसी पर लिखित गुप्त संकेतानुसार उन्होंने कुछ औषधियों के सहारे उसे खोल लिया, उसमें रखे हुए अटूट चमत्कारी शास्त्र देखे। एक पृष्ठ पढ़ने के पश्चात् ज्यों ही दूसरा पृष्ठ पढ़ने लगे त्यों ही अदृश्यवाणी हुई कि दूसरा पृष्ठ तुम्हारे भाग्य में नहीं है, स्तम्भ कपाट पुनः बंद हो गया। अस्तु जितना मिला उतना ही क्या कम था जो आगे जाकर कल्याण मन्दिर की भक्तिरस पूर्ण चमत्कार सिद्धि में कारण बना।

महाकालेश्वर के विशाल शिव प्रांगण में अनेक विद्वान चमत्कारों का गर्व लिए हुए बैठे थे, उसी बीच आचार्यश्री भी पहुँचे हुए थे। उज्जयिनी नरेश विवेकी और परीक्षा प्रधानी थे। राजा ने शिव भक्तों को चमत्कार के लिए संकेत किया, राजा का संकेत पाकर कपिल द्विज बोला 'तो क्षपणक आचार्यश्री करिये न नमस्कार शिवजी को' देखें आपका आत्म वैभव। बस क्या था श्रद्धा बलवान होती है आचार्यश्री की आँखों में वही चित्तौड़गढ़ का भव्य जिन मन्दिर,

सौम्यमूर्ति पार्श्वनाथ की, वही स्तम्भ, वही चमत्कारी शास्त्र का पृष्ठ उस शिवमूर्ति में दिखाई देने लगा। आचार्यश्री के मुख से निकल पड़ा –

आकर्णितोऽपि महितोपि निरीक्षतोऽपि।
नूनं न चेतसि मयाविघृतोऽसि भक्त्या ।।
जातोऽस्मि तेन जन बान्धव! दुःखपात्रं ।
यस्मात्क्रियाः प्रतिफलन्ति न भाव शून्या ।।38।।

परिणाम यह हुआ कि राजा सहित सभी ने समीचीन जैनधर्म को स्वीकार किया। उसी समय राजाज्ञा से आचार्यश्री ने कल्याण मन्दिर स्तोत्र की रचना कर जन साधारण का महान कल्याण किया।

जो मानव इस स्तोत्र का भक्ति श्रद्धा से पाठ करता है, पूजा करता है, व्रत करता है, विधान करवाता है वह संसार के पापों से व दुःखों से छूटकर आत्मकल्याण कर स्वर्ग व मोक्ष सुख को प्राप्त करता है।

जिस प्रकार मानव भक्तामर के 48 व्रत करता है उसी प्रकार कल्याण मन्दिर के भी उपवास, व्रत, नीरस भोजन आदि शक्ति प्रमाण व्रत करके उद्यापन करता है। इसके व्रत 44 होते हैं, व्रत के जाप मंत्र पूजा में प्रत्येक श्लोक के साथ लिखे हुए हैं। व्रत के दिन 3 बार जाप करें, पूजा करें, पार्श्वनाथ स्तोत्र का पाठ करें, चालीसा पढ़ें, आरम्भ का त्याग करें।

इन सभी कार्यो से एवं भगवान की भक्ति से संसारी जीवों के दुःखों का नाश होकर अभीष्ट फल अवश्य प्राप्त होता है।

संकलन
क्षुल्लिका सिद्धश्री माताजी

प्रस्तुति

प्रतिष्ठाचार्य पं. अखिलेश शास्त्री रमगढ़ा

जिनेभक्तिर्जिनेभक्तिर्दिने दिने
सदामेस्तु सदामेस्तु भवे भवे!!

जिनेंद्र प्रभु की भक्ति निश्चित क्रमशः मुक्ति का हेतु है बिना जिनेंद्र भक्ति के इस संसार से गृहस्थ श्रावकों को अन्य कोई माध्यम नहीं है जो भव पार करा सके इसलिए हम श्रावकों को सदैव ध्यान रखना चाहिए कि हम जिनेंद्र भगवान की भक्ति विभिन्न रूपों में कर सकते हैं चाहे वह पूजन के माध्यम से हो स्तुति के माध्यम से हो जाप के माध्यम से हो या फिर स्तोत्र आदि के माध्यम से कर सकते हैं परंतु आचार्य ने सबका अलग अलग फल वर्णन किया है कोटी पूजा समं स्तोत्रम् कोटी स्तोत्र समं जपाः अर्थात् करोड़ों पूजाओं का फल जितना है उतना एक स्तोत्र के पठन में प्राप्त हो जाता है और करोड़ों स्तोत्रों का जो फल है वह एक जप में प्राप्त हो जाता है।

भव्य जीवों को चाहिए कि वह भावपूर्वक भक्ति करें ताकि उन्हें पूजा का स्तोत्र का जाप का समूचा फल प्राप्त हो क्योंकि कल्याण मंदिर स्तोत्र मैं कहा भी है –

आकर्णितोपि महितोपि निरीक्षतोपि,
नूनं न चेतसि मया विधृतोसि भक्त्या
जातोस्मि तेन जनबान्धव!दुःखपात्रं,
यस्मात् क्रिया प्रतिफलंति न भाव शून्याः।।38।।

अर्थात पहले कि किन्हीं जन्मों में मैंने यदि आपका नाम भी सुना हो आपकी पूजा भी की हो तथा आपका दर्शन भी किया हो तो भी यह निश्चय है कि मैंने भक्ति भाव से आपको अपने हृदय में कभी भी धारण नहीं किया इसलिए तो अब तक इस संसार में मैं दुःखों का पात्र ही बना रहा क्योंकि भाव रहित क्रियाएं फलदायक नहीं होती

आचार्य कुमुद चंद्र स्वामी ने जो कल्याण मंदिर स्तोत्र में विरोधाभास अलंकार का सुंदर प्रयोग किया है वह वास्तव में ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य कुमुद चंद्र देव चिंतामणि कल्पद्रुम पार्श्वनाथ भगवान से साक्षात समवसरण में वार्तालाप कर रहे हो क्योंकि जिस तरह से अष्ट प्रातिहार्यों का वर्णन इस स्तोत्र में किया गया है इससे प्रतीत होता है कि आचार्य देव अपने अंतःकरण में तीर्थंकर पार्श्वनाथ भगवान के समवसरण को विराजमान करके स्तोत्र की रचना कर

रहे हों यही कारण है की कल्याण मंदिर जन जन की सामान्य से सामान्य पीड़ा को हरण कर लेता है और अक्षय भंडार प्रदान करता है निश्चित मानो जो भव्य इस महान स्तोत्र का पठन पाठन करते हैं वह एक दिन भवसागर से पार होते हुए उन अनंतानंत सिद्धों की श्रेणी में आ जाते हैं आचार्य कुमुद चंद्र स्वामी का यह उपहार एवं परम पूज्य सारस्वत कवि आचार्य 108 विभव सागर जी महाराज की मंगलमई लेखनी से अवतरित मंदिर गीता कल्याण मंदिर पद्यानुवाद आ.श्री के हृदय के अत्यंत करीब है पूज्य श्री ने कल्याण मंदिर के शिविर लगाकर जन सामन्य तक आचार्य कुमुदचंद्र स्वामी एवं उनकी अमूल्य कृति कल्याण मंदिर से परिचय कराया गुरुदेव का पूर्वाचार्यों के प्रति अगाध समर्पण ही उनकी काव्य कुशलता का राज प्रतीत होता है जब जब गुरुदेव पूर्वाचार्य कृत रचनाओं का पद्यानुबाद करते है तब तब हमें लगता है उन महान यतीश्वरों की कृपा गुरुदेव पर वरषती है और वह कृति अद्वितीय हो जाती है गुरुदेव की प्रत्येक कृति जन–जन के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करेंगी।

परम पूज्य क्षु. रत्न 105 सिद्ध श्री माताजी की अगाध श्रद्धा का प्रतिफल है यह चित्रमयी महान उपकारी कल्याण मंदिर स्तोत्र

पूज्य माताजी ने अल्पवय में दीक्षा ग्रहण कर अल्प समय में ही अपनी प्रज्ञा का सम्यक् उपयोग जिनश्रुत सेवा की ओर लगाया आपकी दृढ विश्वास का प्रति फल है कि मात्र दीक्षा के पश्चात अल्प समय में कल्याण मंदिर स्तोत्र जन जन के कल्याणार्थ संकलित कर प्रकाशन सहयोग का आशीर्वाद प्राचार्य आलोक जी डिण्डोरी परिवार एवं श्री दिगम्बर जैन समाज भाटापारा को प्राप्त हुआ सहयोगियों की भी जिद थी कि हम यह कृति पूज्य माता जी के रजत जन्म महोत्सव पर पूज्य आ.श्री विभवसागर जी महाराज के कर कमलों मे समर्पित करेंगे

इस कृति में हमें विशेष सहयोग श्रीमति रश्मि जी रमगढा.का रहा जिन्होने चित्रों का संग्रह दिया। मैं आभारी हूँ विकास ऑफसेट भोपाल का जिन्होने समय अवधि के भीतर यह कार्य सम्पूर्ण किया।

आप सबके कर कमलों में सादर समर्पित आप प्रतिदिन इस महान स्तोत्र का आराधन करें ताकि सभी के कर्मक्षय हों और मुक्ति रूपी लक्ष्मी का वरण हो यही हमारी मंगल कामना है

जयदुभारदी

कल्याण मन्दिर उच्चारण विधि

– आचार्य विभवसागर

1. “कल्याण मन्दिर स्तोत्र” संस्कृत भाषा के वसन्त तिलका छन्द में रचा गया है। तथा अन्तिम छन्द आर्या छन्द में रचित है।
2. इस स्तोत्र में 43 काव्य वसन्त तिलका छन्द में तथा 1 काव्य आर्या छन्द में है।
3. वसन्त तिलका छन्द में चार पंक्ति होती हैं। प्रत्येक पंक्ति में 14–14 अक्षर एवं 21–21 मात्रायें होती हैं। एक काव्य में 56 अक्षर, 84 मात्रायें हो जाती है।
4. अन्तिम काव्य में आर्या छन्द है। जिसके चार चरण होते हैं प्रथम चरण में 12 मात्रा, द्वितीय चरण में 18 मात्रा, तृतीय चरण में 12 मात्रा, चतुर्थ चरण में 15 मात्रा होती हैं। यह छन्द शास्त्र का सामान्य नियम है। छंद में मात्रा एवं अक्षर का क्रम – ह्रस्व = 1, दीर्घ = ऽ,

मात्राएँ –	मात्रा	–	ऽ ऽ ।	ऽ।।	। ऽ ।	।ऽ।	ऽऽ	= 21
	अक्षर	–	कल्याण	मन्दिर	मुदार	मवद्य	भेदि	= 14
	मात्रा	–	ऽऽ	।ऽ।।	।ऽ।।	ऽ।	ऽऽ	= 21
	अक्षर	–	भीता	भयप्रद	मनिंदित	मंघ्रि	पद्मम्	= 14

1. जो अक्षर दो व्यंजन और एक स्वर से मिलकर बनते हैं वे संयुक्त अक्षर कहलाते हैं जैसे क्ष, त्र, ज्ञ, क्र, प्र, म्र म्य, द्य आदि।
2. स्वराघात विधि –

   संयुक्ताक्षर के पूर्व यदि हृदय स्वर अ, इ, उ, ऋ, लृ, आ जावे तो संयुक्ताक्षर के पूर्व स्वर पर जोर देते हुए संयुक्ताक्षर को दो बार उच्चारण जैसा बोलते हैं, यही स्वर आघात है। किन्तु दीर्घस्वर, अनुस्वार, व विसर्ग के आने पर स्वराघात नहीं होता है।
3. ए, ऐ, ओ, औ, ये चार वर्ण संध्यक्षर हैं इनकी हमेशा दो मात्रा होती हैं। जैसे – अ+इ=ए, अ+ए=ऐ, अ+उ=ओ, अ+ओ=औ। इन सभी में दो स्वर हैं। इसलिए दीर्घ ही होते हैं।

4 ए और ओ के बाद कहीं–कहीं (ऽ) चिह्न लगा होता है इसका मतलब 'अ' है किसी भी अक्षर के ऊपर अनुस्वार लगा हो तो उसे ङ् ञ् ण् न् म् इनमें से कोई एक अक्षर में उच्चारित करते हैं।

✻ किसी भी शब्द में अनुस्वार के बाद जिस वर्ग का अक्षर आता है तो अनुस्वार, उसी वर्ग का अंतिम अक्षर हो जाता है।

1.	कं	+	घा	=	कङ्घा		ङ्
2.	किं	+	चिद्	=	किञ्चिद्		ञ
3.	कं	+	टक	=	कण्टक		ण
4.	किं	+	तु	=	किन्तु		न
5.	कं	+	पन	=	कम्पन		म्

पाँच वर्ग होते हैं – कण्ठोच्चारित – क वर्ग – क ख ग घ ङ

मूर्धोच्चारित – ट वर्ग – ट ठ ड ढ ण

ओष्ठोच्चारित – प वर्ग – प फ ब भ म

ताल्वोच्चारित – च वर्ग – च छ ज झ ञ

दन्त्युच्चारित – त वर्ग – त थ द ध न

अन्योच्चारित – य र ल व श ष ह संयुक्त अक्षर क्ष त्र ज्ञ

✻ गंगा में अनुस्वार के बाद गा है और गा क वर्ग का है इसलिये अनुस्वार ङ् होगा, झंडा में डा है ड ट वर्ग का है ट वर्ग का अन्तिम अक्षर ण है अत: ण् होगा आदि।

✻ शब्द के अन्तिम अक्षर पर अनुस्वर हो तो म् पढ़ा जाता है जैसे ज्ञानं, ध्यानं, मानं।

✻ स से पूर्व अनुस्वार को न्, श, य के पूर्व ञ्, ह के पूर्व ङ् और ष के पूर्व ण् पढ़ते हैं।

✻ श ष स तीनों का उच्चारण अलग–अलग है जब जीभ मूर्धा से घिसटते हुए ड की तरह आती है तब ष होता है, जब जीभ की नोंक ऊपर दाँत की जड़ के ऊपर लगती है तब श होता है और जब जीभ के ऊपर के दाँत के पिछले हिस्से से लगाकर बोला जाये तो स होता है। विसर्ग का उच्चारण हलन्त ह् की तरह होता है।

अनुक्रमणिका

आशीर्वाद	–	आचार्य विभवसागर
प्रस्तवाना	–	आचार्य विभवसागर
तीर्थंकर पार्श्वनाथ परिचय	–	श्रमण शुद्धात्मसागर
आचार्य कुमुदचन्द्र (सिद्धसेन) परिचय	–	गणिनी आर्यिका सुपार्श्वमति
आमुख	–	क्षुल्लिका सिद्धश्री माताजी
प्रस्तुति	–	पंडित अखिलेश शास्त्री
कल्याण मन्दिर उच्चारण विधि	–	आचार्य विभवसागर
कल्याण मन्दिर मण्डल (माड़ना)	–	

	काव्य शीर्षक	पठन फल
1.	मंगलाचरण–वंदना	अभीप्सित कार्य सिद्धि दायक
2.	स्तवन संकल्प	मनोवांछित फलदायक
3.	लघुता बोध	जल भय निवारक
4.	अकथनीय गुण अनुभव	अकाल मरण निवारक
5.	विनय विधि	गुप्त धन प्रदर्शक
6.	अनन्त गुणी परमात्मा	सन्तान सम्पत्ति प्रसाधक
7.	आत्म रक्षा मंत्र	सर्व भय नाशक
8.	भक्ति से कर्मबंधन नाश	कुपित उपदंश विनाशक
9.	जिनदर्शन से विपदा दूर	सर्पादि विष विनाशक
10.	तारण–तरण जिनराज!	तस्कर भय निवारक
11.	उत्तम ब्रह्मचर्य धारक!	जल अग्नि भय निवारक
12.	कल्पनातीत महिमा	अग्नि भय निवारक
13.	क्रोध विजय का चमत्कार	जल मिष्टता कारक
14.	परमात्मा की खोज	शत्रु स्नेह जनक
15.	प्रभु का ध्यान–प्रभु समान	चोरी गया द्रव्य दायक
16.	ध्यान से राग–द्वेष विजय	गहन वन पर्वत भय विनाशक
17.	अभेद ध्यान का प्रभाव	सर्प विष विनाशक

18.	जगत पूज्य परमात्मा	युद्ध विग्रह विनाशक
19.	अशोक वृक्ष प्रातिहार्य	नेत्र रोग नाशक
20.	पुष्पवृष्टि प्रातिहार्य	उच्चाटन कारक
21.	दिव्य ध्वनि प्रातिहार्य	शुष्क वन विकासक
22.	चामर प्रातिहार्य	मधुर फल प्रदायक
23.	सिंहासन प्रातिहार्य	राज्य सम्मान दायक
24.	भामण्डल प्रातिहार्य	राज्य सम्मान दायक
25.	देव दुन्दुभि प्रातिहार्य	असाध्य रोग शामक
26.	छत्रत्रय प्रातिहार्य	वचन सिद्धि प्रतिष्ठापक
27.	गन्धकुटी–तीन पीठिका	वैर विरोध विनाशक
28.	जिनशरण–परमशरण	यशः कीर्ति प्रशासक
29.	भवतारक परमात्मा	आकर्षण कारक
30.	विरोधाभास अलंकार स्तुति	असंभव कार्य साधक
31.	उपसर्क वर्णन	शुभाशुभ प्रश्न दर्शक
32.	उपसर्ग वर्णन	दुष्टता प्रतिरोधी
33.	उपसर्ग वर्णन	प्राकृतिक आपदा नाशक
34.	धन्यवाद आराधक!	भूत बाधा निवारक
35.	नाम स्मरण विपदा नाश	मृगी रोग विनाशक
36.	जिन पूजा से मनोरथ सिद्ध	मानव वशीकरण
37.	जिनदर्शन से संकट दूर	भूत बाधा निवारक
38.	भाव शून्य क्रिया निष्फल	असह्य कष्ट नाशक
39.	प्रार्थना	सर्व ज्वर शामक
40.	पश्चाताप–प्रतिक्रमण	विषम ज्वर विघातक
41.	रक्षा करो परमात्मा	अस्त्र–शस्त्र विघातक
42.	सदा सर्वत्र आप शरण	स्त्री रोग नाशक
43.	स्तुति फल	बंधन मोचक
44.	स्तुति फल–उपसंहार	वैभव वर्द्धक

अखण्ड पाठ विधि

कल्याण मन्दिर व्रत विधान विधि

कल्याण मन्दिर विधान का मण्डल

मंगलाचरण

कल्याण-मन्दिर-मुदार-मवद्य-भेदि,
भीताभय-प्रद-मनिन्दित-मंघ्रि-पद्मम्।
संसार-सागर-निमज्ज-दशेष-जंतु,
पोताय-मान-मभि-नम्य जिनेश्वरस्य॥

1

अन्वयार्थ -

कल्याणमन्दिरम्	-	कल्याणों के मन्दिर
उदारम्	-	उदार
अवद्यभेदि	-	पापों को नष्ट करने वाले
भीताभयप्रदम्	-	संसार से डरे हुए जीवों को अभयपद देने वाले
अनिन्दितम्	-	प्रशंसनीय और
संसारसागर	-	संसाररूपी समुद्र में
निमज्जत्	-	डूबते हुए
अशेष जन्तु	-	समस्त जीवों के लिये
पोतायमानम्	-	जहाज के समान
जिनेश्वरस्य	-	जिनेन्द्र भगवान् के
अङ्घ्रिपद्मम्	-	चरणकमलको
अभिनम्य	-	नमस्कार करके।

भावार्थ - हे विश्वगुणभूषण! कल्याणों के मंदिर, अत्यन्त उदार, अपने और पर के पापों के नाशक, संसार के दुःखों से डरने वालों को अभयप्रद अतिश्रेष्ठ, संसार सागर में डूबते हुए प्राणियों के उद्धारक, श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र के चरण-कमलों को नमस्कार करके (स्तुति करता हूँ)॥ 1 ॥

अभीप्सित कार्य सिद्धि दायक

कल्याणों के मन्दिर जिनवर, उर में विश्व समाया है।
भव्यजनों के पाप विनाशक, भय को अभय दिलाया है॥
भव सागर में डूब रहे को, हैं जहाज सम चरण कमल।
परम प्रशंसित पार्श्व जिनेश्वर, नमस्कार करके प्रतिपल॥ 1॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ॥
कल्याणों के मंदिर हैं, विश्व समाहित सुन्दर हैं।
हैं उदार महिमा वाले, गुण महान गरिमा वाले॥
पाप विनाशक भव्यों के, ज्ञाता दृष्टा द्रव्यों के।
जिनवर अभय प्रदाता हैं भयवानों के त्राता हैं॥
परम, पुनीत, प्रशंसा के, पात्र बनें अनुशंसा के।
भवसागर में पतितों को, श्रावक साधक यतियों को॥
जग के उन सब जीवों को, धर्म-मार्ग अनुजीवों को।
हैं जहाज सम चरण कमल, नमस्कार करके प्रतिपल॥
रचनाकर मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ॥1॥

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हं णमो इट्ठ कज्ज सिद्धिपराणं जिणाणं (जिन भगवान् को नमस्कार हो)।
मन्त्र- ॐ ह्रीं कमठस्मय धूमकेतूपमाय श्री पार्श्वनाथजिनाय नमः।

स्तवन संकल्प

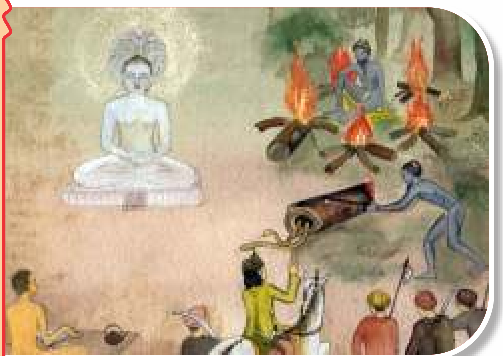

यस्य स्वयं सुर-गुरु-र्गरि-माम्बु-राशेः,
स्तोत्रं सु-विस्तृत-मति-र्न विभु-र्विधातुम्।
तीर्थेश्वरस्य 'कमठ'-स्मय-धूम-केतोस्,
तस्याह-मेष किल संस्तवनं करिष्ये॥

2

अन्वयार्थ –

गरिमाम्बुराशेः	– गौरव के समुद्रस्वरूप	यस्य	– जिन पार्श्वनाथ की
स्तोत्रम् विधातुम्	– स्तुति करने के लिये		
स्वयं सुविस्तृतमतिः	– खुद विस्तृत बुद्धिवाले	सुरगुरुः	– बृहस्पति भी
विभुः	– समर्थ		
न' अस्ति	– नहीं हैं,		
कमठस्मयधूमकेतोः	– कमठ का मान भस्म करने के लिये अग्निस्वरूप		
तस्य तीर्थेश्वरस्य	– उन भगवान् पार्श्वनाथ की		
किल	– निश्चय से		
एषः अहम्	– यह मैं		
संस्तवनम् करिष्ये	– स्तुति करूँगा।		

भावार्थ – गम्भीरता के समुद्र, जिसकी स्तुति करने के लिये विशाल बुद्धि वाला देवताओं का गुरु स्वयं बृहस्पति भी समर्थ नहीं है, तथा जो प्रतापी कमठ के अभिमान को भस्मीभूत करने के लिये धूमकेतु अर्थात् अग्नि रूप है, उन तेइसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ भगवान् का मैं निश्चय से स्तवन करूँगा।

मनोवांछित फलदायक

अति महानतम गरिमा सागर, गुण गरिमा के हैं भण्डार।
जिनकी संस्तुति के रचने में, देव गुरु ना पाते पार॥
कमठासुर के मान भस्म को, प्रभु आप थे अग्नि समान।
उन्हीं पार्श्वनाथ भगवन का, भक्ति से करता गुणगान॥ 2 ॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ।।
जिनवर गुण के आगर हैं, गुण गरिमा के सागर हैं।
पूर्ण गुणों के गाने में, गुणमय काव्य रचाने में।।
महा विशाल बुद्धि वाला, द्वादशांग मति धी वाला।
सुरगुरु अरे समर्थ नहीं, उसकी भक्ति व्यर्थ नहीं।।
कमठ मान मतवाला था, मान भस्म कर डाला था।
कमठ घमण्डी शठ रिपुवर, उसे अग्निवत् थे प्रभुवर।।
उन ही पार्श्व जिनेश्वर की, कर्मजयी तीर्थेश्वर की।
संस्तुति को आरम्भ करूँ, मन, वच, तन, प्रारम्भ करूँ।।
रचनाकर मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ।। 2।।

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हं णमो दव्वंकराणं ओहिजिणाणं।

मन्त्र- ॐ नमो भगवते अभीप्सित कार्य सिद्धिं कुरु कुरु स्वाहा।

लघुता बोध

सामान्यतोऽपि तव वर्णयितुं स्वरूप,
मस्मादृशाः कथ-मधीश! भवन्त्यधीशाः।
धृष्टोऽपि कौशिक-शिशु-र्यदि वा दिवान्धो,
रूपं प्ररूपयति किं किल घर्म-रश्मेः? ॥

3

अन्वयार्थ -

अधीश!	- हे स्वामिन्!	सामान्यतः अपि	- साधारण रीति भी
तव	- तुम्हारे	स्वरूपं	- स्वरूप को
वर्णयितुम्	- वर्णन करने के लिये	अस्मादृशाः	- मुझ जैसे मनुष्य
कथम्	- कैसे	अधीशाः	- समर्थ
भवन्ति	- हो सकते हैं? अर्थात् नहीं हो सकते।		
यदि वा	- अथवा	दिवान्धः	- दिन में अन्धा रहने वाला
कौशिकशिशुः	- उल्लू का बच्चा	धृष्टः अपि 'सन्'	- धीठ होता हुआ भी
किम्	- क्या	घर्मरश्मेः	- सूर्य के
रूपम्	- रूप का		
प्ररूपयति किल	- वर्णन कर सकता है? अर्थात् नहीं कर सकता।		

भावार्थ - हे सप्तभय विनाशक देव! आपके गुणों का सामान्य रूप से भी वर्णन करने के लिये हम सरीखे मन्दबुद्धि वाले पुरुष कैसे समर्थ हो सकते हैं? अर्थात् नहीं हो सकते। जैसे जिसे दिन में स्वयं नहीं सूझता ऐसा उलूक (उल्लू) पक्षी का बच्चा धीठ होकर भी क्या सूर्य के जगमगाते बिम्ब का वर्णन कर सकता है? अर्थात् कदापि नहीं कर सकता॥ 3 ॥

जल भय निवारक

साधारण भी महिमा गाने, मैं असमर्थ शिशु अन्जान।
मेरे जैसे अज्ञ जनों से होगा कैसे भक्ति गान॥
वह उलूक अत्यंत चपल हो, जगमगात उस दिनकर का।
वर्णन क्या कर सकता बोलो?, अज्ञ अन्ध मैं जिनवर का॥ 3 ॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ।।
अगम, अनूप जिनेश्वर की, विमल रूप परमेश्वर की।
पूर्ण रूप तो शक्ति कहाँ? साधारण भी भक्ति कहाँ?।।
मुझ जैसा अल्पज्ञ विभो, तव स्वरूप अनभिज्ञ विभो।
अति महान अर्हद् महिमा, ना सक्षम गाने गरिमा।।
देखा कभी न सूरज को, तिमिर विनाशी मूरत को।
वह उलूक अत्यंत चपल, धृष्ट हुआ कहने प्रतिपल।।
वर्णन क्या कर पायेगा? निश्चय ही रह जायेगा।
वह दिवान्ध हो दिनकर का, अज्ञ अंध मैं जिनवर का।।
रचनाकर मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ।। 3।।

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हंणमो समुद्दभयसामणबुद्धीणं परमोहिजिणाणं
मन्त्र-ॐ ह्रीं त्रैलोक्याधीशाय नमः।

अकथनीय गुण अनुभव

मोह-क्षया-दनु-भवन्-नपि नाथ! मर्त्यो,
नूनं गुणान् गणयितुं न तव क्षमेत।
कल्पान्त-वान्त-पयस: प्रकटोऽपि यस्मान्
मीयेत केन जलधे-र्ननु रत्न-राशि:?॥

4

अन्वयार्थ -

नाथ!	- हे नाथ!	मर्त्य:	- मनुष्य
मोहक्षयात्	- मोहनीय कर्म के क्षय से		
अनुभवन् अपि	- अनुभव करता हुआ भी	तव	- आपके
गुणान्	- गुणों को	गणयितुम्	- गिनने के लिये
नूनम्	- निश्चय करके		
न क्षमेत	- समर्थ नहीं हो सकता है।		
यस्मात्	- क्योंकि		
कल्पांतवांतपयस:	- प्रलयकाल के समय जिसका पानी बाहर हो गया है, ऐसे		
जलधे:	- समुद्र की		
प्रकट:अपि	- प्रकट हुई भी		
रत्नराशि:	- रत्नों की राशि		
ननु केन मीयते?	- किसके द्वारा गिनी जा सकती है? अर्थात् किसी द्वारा नहीं।		

भावार्थ - हे अनन्तगुणनिधि! जैसे प्रलयकाल के समय सब पानी निकल जाने पर भी साफ दिखने वाले समुद्र के रत्नों की गणना नहीं हो सकती वैसे ही मोहाभाव से प्रतिभासमान मनुष्य द्वारा आपके गुणों की गिनती भी नहीं हो सकती, क्योंकि आपके गुण अनन्तानन्त हैं ॥4॥

अकाल मरण निवारक

मोहकर्म के क्षय होने से, करते गुणगण का अनुभव।
फिर भी गणना ना कर सकते, जगती पर ऐसे मानव॥
प्रलयकाल ने बहा दिया हो, रत्नाकर का नीर विपुल।
प्रकट हुई जो रत्न राशियाँ, गिन सकता हैं कौन विमल? ॥ 4 ॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ।।
मोह नाश हो जाने से, अनुभव में गुण आने से।
सम्यग्दर्शन निर्मल है, चारित जिसका उज्ज्वल है।।
ऐसा मानव निश्चय हो, गणना करने तन्मय हो।
गणना क्या कर सकता है? ना समर्थ हो सकता है।।
प्रलय काल ने वहा दिया, सागर का जल सुखा दिया।
रत्नों का फिर ढेर वहाँ, दिखता नयनों सदा-सदा।।
पर वह गणना कौन करे? गणना से वह सदा परे।
हे स्वामिन्! तव गुण सारे, निज अनंत महिमा धारे।।
रचनाकर मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ।। 4।।

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हंणमो अकालमिच्चुवारयाणं सव्वोहिजिणाणं।
मन्त्र-ॐ नमो भगवति ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं नमः स्वाहा।

विनय विधि

अभ्युद्यतोऽस्मि तव नाथ! जडाशयोऽपि,
कर्तुं स्तवं लस-दसंख्य-गुणाकरस्य।
बालोऽपि किं न निज-बाहु-युगं वितत्य,
विस्तीर्णतां कथयति स्वधियाम्बु-राशेः?॥

5

अन्वयार्थ-

नाथ! - हे स्वामिन् जडाशयः अपि 'अहम् - मैं मूर्ख भी

लसदसंख्यगुणाकरस्य - शोभायमान असंख्यात गुणों की खानि स्वरूप

तव - आपके स्तवम् कर्तुम् - स्तवन करने के लिये

अभ्युद्यतः - तैयार अस्मि - हुआ हूँ। क्योंकि

बालः अपि - बालक भी स्वधिया - अपनी बुद्धि के अनुसार

निजबाहुयुगम् - अपने दोनों हाथों को

वितत्य - फैलाकर किम् - क्या

अम्बुराशेः - समुद्र के विस्तीर्णताम् - विस्तार को

न कथयति - नहीं कहता? अर्थात् कहता है।

भावार्थ - हे गुणगणाधिप! जैसे शक्तिहीन अबोध बालक सहज स्वभाव से अपनी पतली छोटी-छोटी दोनों भुजाओं को पसार कर विशाल समुद्र के विस्तार (फैलाव) को बतलाने का असफल प्रयत्न करता है, ठीक है वैसे ही हे भगवन्! मैं महामूर्ख तथा जड़ बुद्धि वाला होकर भी अपूर्व अपरिमित गुणों से सुशोभित आपके सच्चिदानन्द स्वरूप की अमर्यादित महिमा का वर्णन करने के लिये उद्यत हो गया हूँ॥ 5॥

गुप्त धन प्रदर्शक

प्रभो! आप तो शोभित होते, नेक गुणों के विमल सदन।
कहने को तैयार हुआ हूँ, मैं अबोध शिशु अन्तर्मन॥
अरे! बुद्धि के अनुसार क्या, हाथों को फैलाता ना?
सागर का विस्तार शिशु क्या, तुतलाता बतलाता ना?॥ 5॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ।।
मैं मूरख, मैं अज्ञानी, आप गुणों के हो खानी।
भरे हुए हो गुण गण से, आभा–पूरित कण–कण से।।
गुण गाने तैयार हुआ, मैं अबोध लाचार हुआ।
सहज सुभाव हमारा है, वन्दन भाव हमारा है।।
बालक ज्यों बुद्धि बल से, अन्दर बाहर निश्छल से।
हाथों को फैलाकर के, तुतलाकर बतलाकर के।।
सागर का विस्तार विभो, ना कहने तैयार प्रभो?।
सचमुच में वह कहता है, मानो उसकी जड़ता है।।
रचनाकर मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ।। 5।।

ऋद्धि–ॐ ह्रीं अर्हंणमो गोधणवड्डुकराणं अणंतोहिजिणाणं।
मन्त्र–ॐ ह्रीं सुखविधायकाय श्री पार्श्वनाथजिनाय नमः।

अनन्त गुणी परमात्मा

ये योगिना-मपि न यान्ति गुणास्तवेश!
वक्तुं कथं भवति तेषु ममाव-काशः।
जाता तदेव-मस-मीक्षित-कारितेयं,
जल्पन्ति वा निजगिरा ननु पक्षिणोऽपि।।

6

अन्वयार्थ -

ईश!	- हे प्रभो!	तव	- आपके
ये गुणाः	- जो गुण	योगिनाम् अपि	- योगियों को भी
वक्तुम्	- कहने के लिये	न यान्ति	- नहीं प्राप्त होते-अर्थात् जिनका कथन योगिजन भी नहीं कर सकते
तेषु	- उनमें	मम	- मेरा
अवकाशः	- अवकाश	कथम् भवति	- कैसे हो सकता है? अर्थात् मैं उन्हें कैसे वर्णन कर सकता हूँ?
तत्	- इसलिये	एवम्	- इस प्रकार
इयम्	- मेरा यह		
असमीक्षितकारिता जाता	- बिना बिचारे काम करता हुआ		
वा	- अथवा	पक्षिणः अपि	- पक्षी भी
निजगिरा	- अपनी वाणी से	जल्पन्ति ननु	- बोला करते हैं।

भावार्थ - हे गुणगणलंकृत देव! आपके जिन अपरिमित गुणों का वर्णन करने में बड़े-बड़े योगी और धुरन्धर विद्वान तक अपने आपको असमर्थ मानते हैं, उन गुणों का वर्णन मुझ जैसा अल्पज्ञ मानव कैसे कर सकता है? अतः स्तवन प्रारम्भ करने के पूर्व अपनी शक्ति को न तौलकर मैंने आपकी जो स्तुति प्रारम्भ की है, वास्तव में मेरा यह प्रयत्न बिना विचारे ही हुआ फिर भी मानव जाति की वाणी बोलने में असमर्थ पशु-पक्षी अपनी ही बोली में बोला करते हैं वैसे ही मैं भी अपनी बोली में आपकी प्रभावशालिनी पुण्यदायिनी स्तुति करने के लिये प्रवृत्त हुआ हूँ।। 6 ।।

सन्तान सम्पत्ति प्रसाधक

योगीश्वर भी कह ना पाते, मुझे मिले अवकाश कहाँ?
तव संस्तुति आरम्भ करूँ मैं, बिना विचारे आज यहाँ॥
ज्यों पक्षीगण सदा बोलते, अपनी-अपनी भाषा में।
त्यों प्रभुवर गुणगान करूँ मैं, भावों भरी पिपासा में॥ 6॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ।।
हे स्वामी जी! आप सुगुण, भरे हुये हैं उत्तम गुण।
योगी ध्यान लगाते हैं, आठों यामों ध्याते हैं।।
आप कथन में न आते, अनुभव कहे नहीं जाते।
निश्चय से इस वाणी का, मेरे जैसे प्राणी का।।
होगा किस भाँति अवकाश, यह न समझा तेरा दास।
बिना विचारे बोल रहा, अन्तर्मन ये खोल रहा।।
चोंच डुबाते पानी में, बोले अपनी वाणी में।
सदा-सदा वह पक्षीगण, जागा मेरा अन्तर्मन।।
रचनाकर मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ।। 6।।

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हं णमो पुत्तइत्थिकराणं कोट्ठबुद्धीणं।
मन्त्र-ॐ ह्रीं अव्यक्तगुणाय श्री पार्श्वनाथजिनाय नमः।

आत्म रक्षा मंत्र

आस्ता-मचिन्त्य महिमा जिन! संस्तवस्ते,
नामापि पाति भवतो भवतो जगन्ति।
तीव्रातपोऽप-हत-पान्थ-जनान् निदाघे,
प्रीणाति पद्मसरसः सरसोऽनिलोऽपि।।

7

अन्वयार्थ -

जिन!	-	हे जिनेन्द्र!			
अचिन्त्यमहिमा	-	अचिंत्य है माहात्म्य जिसका ऐसा			
ते	-	आपका	संस्तवः	-	स्तवन
आस्ताम्	-	दूर रहे	भवतः	-	आपका
नाम अपि	-	नाम भी	जगन्ति	-	जीवों को
भवतः	-	संसार से	पाति	-	बचा लेता है। क्योंकि
निदाघे	-	ग्रीष्मकाल में			
तीव्रातपोपहतपान्थजनान्	-	तीव्र घामसे सताये हुए पथिकजनों को			
पद्मसरसः	-	कमलों के सरोवर का	सरसः	-	सरस-शीतल
अनिलः अपि	-	पवन भी			
प्रीणाति	-	सन्तुष्ट करता है।			

भावार्थ - हे सातिशयनाम्! जैसे ग्रीष्मकाल में असह्य प्रचण्ड धूप से व्याकुल राहगीरों को केवल कमलों से युक्त सरोवर ही सुखदायक नहीं होते, अपितु उन जलाशयों की जल कण मिश्रित ठंडी-ठंडी झकोरें भी सुखकर प्रतीत होती हैं। वैसे ही हे प्रभो! आपका स्तवन ही प्रभावशाली नहीं है, वरन् आपके पवित्र नाम का स्मरण भी जगत के जीवों को संसार के दारुण दुःखों से बचा लेता है। वास्तव में प्रभु के गुणगान और उनके नाम की महिमा अचिन्त्य है ॥ 7 ॥

सर्व भय नाशक

दूर रहे महिमा आराधन, जो अचिन्त्य है मानव से।
तेरे नाम मात्र का सुमरण, रक्षा करता भव-भव से॥
ग्रीष्मकाल की तीव्र तपन से, राही आकुल व्याकुल हों।
दूर जलाशय होने पर भी, पाकर पवन निराकुल हों॥ 7॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ॥
महामहिम! मंगलकारी, हे अचिन्त्य! महिमाधारी।
पूरा संस्तव दूर रहे, नाम मात्र भरपूर रहे॥
पार्श्वनाम का उच्चारण, जय-जिनेन्द्र सुख का कारण।
भव-भव के दु:ख हरता है, जग को सुखमय करता है॥
सूरज धरती तप्त करे, सारा जग सन्तप्त करे।
प्यासा राही आकुल हो, दूर जलाशय में जल हो॥
कमलों व्याप्त सरोवर से, पवन उठे जल भर-भर के।
शीतलता को देती है, तीव्रतपन हर लेती है॥
रचनाकर मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ॥ 7॥

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हं णमो अभिट्ठसाधयाणं बीजबुद्धीणं।
मन्त्र-श्री भवाटवीनिवारकाय श्री पार्श्वनाथजिनाय नमः।

भक्ति से कर्मबंधन नाश

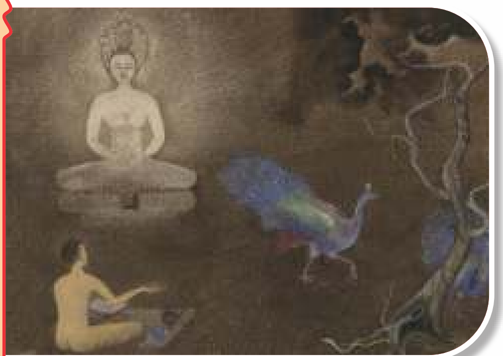

हृद्-वर्तिनि त्वयि विभो! शिथिली-भवन्ति,
जन्तोः क्षणेन निविडा अपि कर्मबन्धाः।
सद्यो भुजंगम-मया इव मध्य-भाग-,
मभ्यागते वन-शिखण्डिनि चन्दनस्य॥

8

अन्वयार्थ –

विभो!	–	हे स्वामिन्!	त्वयि	–	आपके
हृद्वर्तिनि 'सति'	–	हृदय में मौजूद रहते हुए			
जन्तोः	–	जीवों के	निविडाः अपि	–	सघन भी
कर्मबन्धाः	–	कर्मों के बन्धन	क्षणेन	–	क्षणभर में
वनशिखण्डिनि	–	वन मयूर के			

चन्दनस्य मध्यभागम् अभ्यागते 'सति' – चन्दन तरु के बीच में आने पर

भुजङ्गममया इव	–	सर्पों की कुण्डलियों के समान			
सद्यः	–	शीघ्र ही	शिथिलीभवन्ति	–	ढीले हो जाते हैं।

भावार्थ – हे कर्मबन्धनविमुक्त! जिनेश! जैसे जंगली मयूरों के आते ही मलयागिरि के सुगन्धित चन्दन के सघन वृक्षों में कोंडराकार लिपटे हुए, भयंकर भुजंगों की दृढ़ कुण्डलियाँ तत्काल ढीली पड़ जाती हैं, वैसे ही संसारी जीवों के मन-मन्दिरों के उच्च सिंहासनों पर आपके विराजमान होने पर आपका नाम-मंत्र स्मरण करने पर उनके ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मों के कठोरतम बन्धन क्षणमात्र में अनायास ही ढीले पड़ जाते हैं॥8॥

कुपित उपदंश विनाशक

तन मन्दिर की हृदय वेदि पर, पार्श्वनाथ जब आते हैं।
जन्म-जन्म के सघन बन्ध भी, क्षण भर में टल जाते हैं॥
मलयागिरि चन्दन पर लिपटीं, सर्पों की वह मण्डलियाँ।
वन मयूर के आ जाने पर, ढीली पड़ती कुण्डलियाँ॥ ८॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ।।
प्रभो! आपकी यह सूरत, वीतराग छवि जिन मूरत।
हृदय कमल में आने पर, अन्तस् में बस जाने पर।।
जन्म-जन्म के बन्धन भी, कर्मोदय अनुबन्धन भी।
क्षण में ढीले पड़ जाते, या फिर छोड़ चले जाते।।
चहक-महक हो उपवन में, खुशबू के चन्दन वन में।
सर्पों की हों मण्डलियाँ, कसे हुए हों कुण्डलियाँ।।
ज्यों मयूर के आने पर, या आवाज सुनाने पर।
अंग शिथिल पड़ जाते हैं, सीधे बिल को जाते हैं।।
रचनाकर मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ।। 8।।

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हंणमो उण्हगदहारीणं पादाणुसारीणं।
ॐ ह्रीं कर्माहिबंधमोचनाय श्री पार्श्वनाथजिनाय नमः।

जिनदर्शन से विपदा दूर

मुच्यन्त एव मनुजाः सहसा जिनेन्द्र!
रोद्रै-रुपद्रव-शतैस् त्वयि वीक्षितेऽपि।
गोस्वामिनि स्फुरित-तेजसि दृष्टमात्रे,
चौरै-रिवाशु पशवः प्रपलाय-मानैः।।

9

अन्वयार्थ -

जिनेन्द्र!	-	हे जिनदेव!	स्फुरिततेजसि	-	पराक्रमी
गोस्वामिनि	-	गोपालक के	दृष्टमात्रे	-	दिखते ही
आशु	-	शीघ्र ही	प्रपलायमानैः	-	भागते हुए
चौरैः	-	चोरों के द्वारा	पशवः इव	-	पशुओं की तरह
त्वयि वीक्षिते अपि	-	आपके दिखते ही-आपके दर्शन करते ही			
मनुजाः	-	मनुष्य	रौद्रैः	-	भयङ्कर
उपद्रवशतैः	-	सैकड़ों उपद्रवों के द्वारा			
सहसा एव	-	शीघ्र ही	मुच्यन्ते	-	छोड़ दिये जाते हैं।

भावार्थ - हे संकटमोचन! जिस तरह प्रचण्ड सूर्य, पराक्रमी भूपाल तथा बलिष्ठ गो-पालकों के दिखते ही भय से शीघ्र भागते हुए चोरों के पंजे से पशु-धन छूट जाता है उसी तरह हे कृपालुदेव! आपकी वीतराग मुद्रा को देखते ही मानव महा-भयंकर सैकड़ों संकटों से तत्काल छुटकारा पाते हैं ॥9॥

सर्पादि विष विनाशक

चोर गाय को ले जाते हो, नयनों दिखता गोपालक।
गाय छोड़कर प्राण बचाने, चोर भागते हैं अपलक॥
उसी तरह जिन पारस तेरा, दर्शन जो कर लेते हैं।
कष्ट सैकड़ों महाभयंकर, पल भर में हर लेते हैं॥ 9॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ।।
घेर सैकड़ों विपदायें, एक साथ भी आ जायें।
जीवन जाता जान पड़े, आपद ऐसी आन पड़े।।
दर्श आपका जो कर ले, विपदायें पल में हर ले।
छूटे भव के बंधन से, दु:खों कष्टों क्रन्दन से।।
चुपके-छिपके आते हों, गाय चुराये जाते हों।
आँखों दिखता गोपालक, चोर भागते हैं अपलक।।
छोड़े पशु वह जाते हैं, अपने प्राण बचाते हैं।
चमत्कार गोपालक का, कहना क्या जगपालक का।।
रचनाकर मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ।। 9।।

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हंणमो विसहरविसविणासयाणं संभिण्णसोदाराणं।
ॐ ह्रीं सर्वोपद्रवहरणाय श्री पार्श्वनाथजिनाय नमः।

तारण-तरण जिनराज!

त्वं तारको जिन! कथं भविनां त एव,
त्वा-मुद्-वहन्ति हृदयेन यदुत्-तरन्तः।
यद्वा दृतिस् तरति यज्-जल-मेष नून,
मन्त-र्गतस्य मरुतः स किलानुभावः।।

10

अन्वयार्थ -

जिन! - हे जिनेन्द्रदेव!

त्वम् भविनाम् तारकः कथम् - आप संसारी जीवों के तारने वाले कैसे हो सकते हैं?

यत्	क्योंकि	उत्तरन्तः	संसार-समुद्र से पार होते हुए
ते एव	वे संसारी जीव ही	हृदयेन	हृदय से
त्वाम्	आपको	उद्वहन्ति	तिरा ले जाते हैं
यद्वा	अथवा ठीक है कि	दृतिः	मसक
यत्	जो	जलम् तरति	पानी में तैरती है,
सः एषः	वह यह	नूनम्	निश्चय से
अन्तर्गतस्य	भीतर स्थित	मरुतः	हवा का
अनुभावः	प्रभाव है।	किल	ही

भावार्थ - हे भवपयोधितारक! जिस तरह अपने भीतर भरी हुई पवन के प्रभाव से चर्म-मशक पानी के ऊपर तैरती हुई किनारे लग जाती है, उसी तरह मन-वचन-काय से आपको अपने मन मन्दिर में विराजमान कर आपका ही रातदिन चिन्तवन करने वाले भव्यजन संसार सागर से बेखटके (बिना बाधा के) पार लग जाते हैं ॥ 10 ॥

तस्कर भय निवारक

तारण-तरण कहाते कैसे? कैसे पार लगाते हो?
भक्त हृदय में स्वयं बिठाते, पार आप हो जाते हो॥
मशक तैरती वह सागर में, हवा भरे जो अन्दर में।
हृदय कमल में तुम्हें बसाते, तिरते वही समुन्दर में॥ 10॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ।।
तारण क्यों कहलाते हो? कैसे पार लगाते हो?।
सच्चे भक्त बुलाकर के, हिरदय बीच बिठाकर के।।
स्वयं पार वह जाते हैं, तुमको पार लगाते हैं।
सचमुच में यह बात सही, चमत्कार यह तेरा ही।।
कारण क्या बतलाऊँ मैं?, यह उदाहरण गाऊँ मैं।
हवा भरी हो अन्दर में, तिरती मशक समुन्दर में।।
भक्त हृदय के अन्दर जिन! करते पार समुन्दर जिन!।
तारण-तरण कहाते हो, भव से पार लगाते हो।।
रचनाकार मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ।। 10।।

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हंणमो तक्खरभयपणासयाणं उजुमदीणं।
मन्त्र-ॐ ह्रीं भवोदधितारकाय श्री पार्श्वनाथजिनाय नमः।

उत्तम ब्रह्मचर्य धारक!

यस्मिन् हर–प्रभृतयोऽपि हत–प्रभावाः,
सोऽपि त्वया रतिपतिः क्षपितः क्षणेन।
विध्यापिता हुतभुजः पयसाथ येन,
पीतं न किं तदपि दुर्धर–वाडवेन?॥

11

अन्वयार्थ –

यस्मिन्	– जिसके विषय में	हरप्रभृतयः अपि	– महादेव आदि भी
हतप्रभावाः जाताः	– प्रभाव रहित हो गये हैं	सः	– वह
रतिपतिः अपि	– कामदेव भी	त्वया	– आपके द्वारा
क्षणेन	– क्षणमात्र में	क्षपितः	– नष्ट कर दिया गया
अथ	– अथवा ठीक है कि	येन पयसा	– जिस जलने
हुतभुजः विध्यापिताः	– अग्नि को बुझाया है,	तत् अपि	– वह जल भी
दुर्धरवाडवेन	– प्रचंड बड़वानल के द्वारा		
किम्	– क्या	न पीतम्	– नहीं पिया गया? अर्थात् पिया गया।

भावार्थ – हे अनङ्गविजयन्! जिस काम ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि प्रख्यात पुरुषों को पराजित कर जन साधारण की दृष्टि में प्रभावहीन बना दिया है। जितेन्द्रिय जिनेन्द्र! उसी काम को आपने क्षण भर में नष्ट कर दिया यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि जो जल प्रचण्ड अग्नि को बुझाने की सामर्थ्य रखता है, वह जल जब समुद्र में पहुँचकर एकत्र हो जाता है, तब क्या अपने ही उदर मैं उत्पन्न हुए, बड़वानल द्वारा नहीं सोंख लिया जाता अर्थात् जला दिया जाता॥ 11॥

जल अग्नि भय निवारक

ब्रह्मा-विष्णु-हरिहरादि भी, कामदेव आधीन हुए।
उसे जीतकर बने जितेन्द्रिय, क्षण भर में स्वाधीन हुए॥
तीन लोक के दावानल को, जल ही एक बुझाता हैं।
किन्तु एक बड़वानल ऐसा, जल को अरे जलाता हैं॥ 11॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ॥
उस अनंग सम अंग नहीं, करता किसको भंग नहीं।
चाहे शिव या शंकर हों, त्राता ब्रह्मा हरिहर हों॥
महादेव आधीन हुए, तीनों लोकों दीन हुए।
जंगल का दावानल हो, वरषे बादल का जल हो॥
अग्नि प्रचण्ड बुझाता हैं, जल को कौन जलाता है।
लेकिन यदि बड़वानल है, जलता सागर का जल है॥
कामदेव है सागर जल, पार्श्व देव हैं बड़वानल।
कामदेव को जला दिया, मदन विजेता भला किया॥
रचनाकार मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ॥ 11॥

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हंणमो वारियालणबुद्धीणं विउलमदीणं।
मंत्र - ॐ ह्रीं हुत भुग्भय निवारकाय श्रीफलवर्द्धि पार्श्वनाथ स्वामिने नमः।

कल्पनातीत महिमा

स्वामिन्-ननल्प-गरिमाण-मपि प्रपन्नास्-,
त्वां जन्तवः कथमहो हृदये दधानाः।
जन्मोदधिं लघु तरन्त्यति-लाघवेन,
चिन्त्यो न हन्त महतां यदि वा प्रभावः॥

12

अन्वयार्थ -

स्वामिन्!	- हे प्रभो!	अहो	- आश्चर्य है कि
अनल्पगरिमाण अपि	- अधिक गौरव से युक्त भी विरोध पक्ष में अत्यन्त वजनदार		
त्वाम्	- आपको	प्रपन्नाः	- प्राप्त हो
हृदये दधानाः	- हृदय में धारण करने वाले		
जन्तवः	- प्राणी	जन्मोदधिम्	- संसार-समुद्र को,
अतिलाघवेन	- बहुत ही लघुता से	कथम्	- कैसे
लघु	- शीघ्र	तरन्ति	- तर जाते हैं।
यदि वा	- अथवा	हन्त	- हर्ष है कि
महताम्	- महापुरुषों का	प्रभावः	- प्रभाव
चिन्त्यः	- चिन्तवन के योग्य	न 'भवति'	- नहीं होता है।

भावार्थ - हे त्रैलोक्यतिलक! जिसकी तुलना किसी दूसरे से नहीं दी जा सकती, अथवा विश्व में जिसकी बराबरी कोई नहीं कर सकता ऐसे अति गौरव को प्राप्त आपको हृदय में धारण कर यह जीव संसार सागर से अतिशीघ्र कैसे तर जाता है? अथवा आश्चर्य की बात है कि महापुरुषों की महिमा चिन्तवन में नहीं आ सकती ॥ 12 ॥

अग्नि भय निवारक

अति महानतम गरिमा वाले, शक्ति पुंज हे अगम! अचल।
भक्त हृदय में बिठा आपको, कैसे तिरते हैं भव जल॥
भली भाँति अति लाघवपन से, वह भव से तर जाते हैं।
अथवा सच है महापुरुष गुण, चिन्तन में ना आते हैं॥ 12 ॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ।।
बहुत बड़ा आश्चर्य अहो!, भक्तों का यह कार्य कहो।
तुमको हृदय समाते हैं!, फिर कैसे तिर जाते हैं।।
क्योंकि आपकी गरिमा का, या कि आपकी महिमा का।
दिखता कोई छोर नहीं, तुमसे बढ़कर और नहीं।।
बल अनंत के स्वामी हो, वीतराग शिवगामी हो।
तिरें भक्त भव सागर से, लघु काल अतिलाघव से।।
हे अचिन्त्य महिमाधारी, महापुरुष हे बलिहारी।
तेरा काम निराला है, सचमुच विस्मय वाला है।।
रचनाकर मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ।। 12।।

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हंणमो अणल भय वज्जयाणं दसपुव्वीणं।

मन्त्र-ॐ ह्रीं सर्व मनोवांछित कार्य साधकाय श्री पार्श्वनाथजिनाय नमः।

क्रोध विजय का चमत्कार

क्रोधस् त्वया यदि विभो! प्रथमं निरस्तो,
ध्वस्-तास् तदा वद कथं किल कर्मचौराः।
प्लोषत्यमुत्र यदि वा शिशिरापि लोके,
नील-द्रुमाणि विपिनानि न किं हिमानी।।

13

अन्वयार्थ -

विभो!	- हे स्वामिन्!	यदि	- यदि
त्वया	- आपके द्वारा	क्रोधः	- क्रोध
प्रथमम्	- पहले ही	निरस्तः	- नष्ट कर दिया गया था,
तदा	- तो फिर	वद	- कहिये कि आपने
कर्मचौराः	- कर्मरूपी चोर	कथम्	- कैसे
किल	- यह आश्चर्य है	ध्वस्ताः	- नष्ट किये?
यदि वा	- अथवा	अमुत्र लोके	- इस लोक में
हिमानी अपि	- बर्फ-तुषार	शिशिरापि	- ठण्डा होने पर भी
किम्	- क्या	नीलद्रुमाणि	- हरे हरे हैं वृक्ष जिनमें ऐसे
विपिनानि	- वनों को		
न प्लोषति	- नहीं जला देता है? अर्थात् जला देता है-मुरझा देता है।		

भावार्थ - हे कोपदमन! यदि आपने अपने क्रोध को पहिले ही नष्ट कर दिया तो फिर आप ही बतलाइये कि आप ने क्रोध के बिना कर्म रूपी चोरों का कैसे नाश किया? अथवा इस लोक में बर्फ एकदम ठण्डा होने पर भी क्या हरे भरे वृक्षों वाले वन-उपवनों को नहीं जला देता है? अर्थात् जला ही देता है ।। 13 ।।

जल मिष्टता कारक

पहले क्रोध जलाकर कैसे, कर्म चोर का नाश किया?।
क्षमा धर्म से जय होती है, अचरज पूर्ण प्रकाश किया॥
शीतल ऋतु की शीतलता जब, हिमकण वरषा लाती है।
हरे-भरे उपवन को भी क्या, आकर नहीं जलाती है?॥ 13॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ॥
अरे विभो! क्या कर बैठे? पहले क्रोध जल बैठे।
कर्म चोर जब आते हैं, आकर ध्यान चुराते हैं॥
तब कैसे जय पाये हो? विश्व-विजय कहलाये हो।
फिर भी तो जय पायी है, विस्मयता दर्शायी है॥
शीतल शिशिर कुहासा हो, चारों ओर धुआँ सा हो।
हिमकण बरषा आती हैं, आकर फसल जलाती है॥
हरे-भरे उस उपवन को, अरे जलाती वन-वन को।
प्रभो आपका क्या कहना, सदा शान्त शीतल रहना॥
रचनाकर मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ॥ 13॥

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हंणमो रिक्खभयवज्जयाणं चौद्दसपुव्वीणं।
मन्त्र-ॐ ह्रीं कर्मचौरविध्वंसकाय श्री पार्श्वनाथजिनाय नमः।

परमात्मा की खोज

त्वां योगिनो जिन! सदा परमात्मरूप-,
मन्वेषयन्ति हृदयाम्बुज-कोश-देशे।
पूतस्य निर्मल-रुचे-र्यदि वा कि-मन्य-,
दक्षस्य सम्भव-पदं ननु कर्णिकायाः॥

14

अन्वयार्थ -

जिन!	- हे जिनेन्द्र	योगिनः	- ध्यान करने वाले मुनीश्वर
सदा	- हमेशा	परमात्मरूप	- परमात्मा स्वरूप
त्वाम्	- आपको		
हृदयाम्बुजकोशदेश	- अपने हृदयरूप कमल के मध्यभाग में		
अन्वेषयन्ति	- खोजते हैं	यदि वा	- अथवा ठीक है कि
पूतस्य	- पवित्र और	निर्मलरुचेः	- निर्मल कान्तिवाले
अक्षस्य	- कमल के बीज का अथवा शुद्धात्मा का		
सम्भवपदम्	- उत्पत्ति स्थान अथवा खोज करने का स्थान		
कर्णिकायाः अन्यत्	- कमल का- डण्ठल को छोड़कर अथवा हृदय-कमल की कर्णिका को छोड़कर		
अन्यत् किम् ननु	- दूसरा क्या हो सकता है?		

भावार्थ - हे तरण-तारण महर्षिजन परमात्मस्वरूप! आपको सदा अपने हृदयाम्बुज के मध्यम भाग में अपने ज्ञान रूपी नेत्रों द्वारा खोजते हैं। ठीक ही है कि जिस प्रकार पवित्र, निर्मल कान्ति युक्त कमल के बीज का उत्पत्तिस्थान कमल की कर्णिका ही है उसी प्रकार शुद्धात्मा के अन्वेषण का स्थान हृदय-कमल का मध्यभाग ही है॥ 14॥

शत्रु स्नेह जनक

हृदय कमल पर तुमको ध्याते, योगीश्वर निज चिन्तन में।
करें निरन्तर वह अन्वेषण, अपने आत्म निकेतन में॥
अमल कान्ति शोभाशाली वह, कमल बीज सुरभित रहता।
कमल कर्णिका के अन्दर ही, अन्य कहीं वह ना रहता॥ 14॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ।।
परम रूप परमातम को, अरस, अरूप जिनातम को।
सदा खोजते योगीगण, अन्तस् में करके विचरण।।
मध्यभाग हृदय-स्थल में, आत्मतत्त्व अन्तस्-तल में।
अरे खोजना उत्तम है, परमातम सर्वोत्तम है।।
परम धरम वह सम्पादन, कमल बीज का उत्पादन।
कमल कर्णिका के अन्दर, अमल कांति से है सुन्दर।।
जिसमें बीज पनपता है, नहीं दूसरा रहता है।
निर्मल मन निज आतम है, उसमें ही परमातम है।।
रचनाकर मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ।। 14।।

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हंणमो भंसणभयझवणाणं अट्ठंग महाणिमित्तकुसलाणं।
मन्त्र-ॐ ह्रीं हृदयाम्बुजान्वेषिताय श्री पार्श्वनाथजिनाय नमः।

प्रभु का ध्यान-प्रभु समान

ध्यानाज्-जिनेश! भवतो भविन: क्षणेन,
देहं विहाय परमात्म-दशां व्रजन्ति।
तीव्रानला-दुपल-भाव-मपास्य लोके,
चामी-करत्व-मचिरा-दिव धातुभेदा:।।

15

अन्वयार्थ -

जिनेश!	- हे जिनेन्द्र	लोके	- लोक में
तीव्रानलात्	- तीव्र अग्नि के सम्बन्ध से	धातुभेदा:	- अनेक धातुएँ
उपलभावम्	- पत्थररूप पूर्व पर्याय को	अपास्य	- छोड़कर
अचिरात्	- शीघ्र ही		
चामीकरत्वम् इव	- जिस तरह स्वर्ण पर्याय को प्राप्त हो जाती हैं, उसी तरह		
भविन:	- संसार के प्राणी	भवत:	- आपके
ध्यानात्	- ध्यान से	देहम्	- शरीर को
विहाय	- छोड़कर	क्षणेन्	- क्षणभर में
परमात्म-दशाम्	- परमात्मा की अवस्था को	व्रजन्ति	- प्राप्त हो जाते हैं।

भावार्थ - हे अलौकिकज्ञानपुंज! जैसे संसार में जिन धातुओं से सोना बनता है, वे नाना प्रकार की धातुएँ। तेज अग्नि के ताव से अपने पूर्व पाषाणरूप पर्याय को छोड़कर शीघ्र स्वर्ण हो जाती हैं वैसे ही आपके ध्यान से संसारी जीव क्षणमात्र में शरीर छोड़कर परमात्मावस्था को प्राप्त हो जाते हैं ॥ 15 ॥

चोरी गया द्रव्य दायक

प्रभो आपको शुद्ध भाव से, जो भी प्राणी ध्याते हैं।
काया की माया को तजकर, परम सिद्ध हो जाते हैं॥
कंचन कल्मष खो देता है, अग्निपाक में तपकर के।
वैसे आतम हो परमातम, नाम निरन्तर भजकर के॥ 15॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ॥
प्रभो! आपके चिन्तन से, चरणों के अवलम्बन से।
मन से तुमको भजकर के, नाम जिनेश्वर जपकर के॥
शुद्ध भावना भा करके, निशदिन तुमको ध्याकर के।
कर जिनेन्द्र सुमरण प्रतिपल, पल में पाते मोक्ष महल॥
स्वर्ण कालिमा वाला हो, जिसे आग में डाला हो।
तपकर कुन्दन होता है, प्रस्तर कल्मष खोता है॥
चेतन कंचन कल्मष तन, ध्यान अग्नि की तेज तपन।
कल्मषता को खोती है, शुद्ध चेतना होती है॥
रचनाकर मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ॥ 15॥

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हंणमो अक्खरधणप्पयाणं विउव्वगपत्ताणं।
मन्त्र-ॐ ह्रीं जन्ममरणरोगहराय श्री पार्श्वनाथजिनाय नमः।

ध्यान से राग-द्वेष विजय

अन्तः सदैव जिन! यस्य विभाव्यसे त्वं,
भव्यैः कथं तदपि नाशयसे शरीरम्।
एतत् स्वरूप-मथ मध्य-विवर्तिनो हि,
यद्-विग्रहं प्रशमयन्ति महानुभावाः॥

16

अन्वयार्थ -

जिन!	-	हे जिनेन्द्र!	भव्यैः	-	भव्य जीवों के द्वारा
यस्य	-	जिस शरीर के	अन्तः	-	भीतर
त्वम्	-	आप	सदैव	-	हमेशा
विभाव्यसे	-	ध्याते जाते हो	तत्	-	अथवा
एतत्स्वरूपम्	-	यह स्वभाव ही है,	यत्	-	कि
मध्यविवर्तिनः	-	मध्यस्थ-बीच में रहने वाले और राग-द्वेष से रहित			
महानुभावाः	-	महापुरुष	विग्रहम्	-	विग्रहशरीर और द्वेष को
प्रशमयन्ति	-	शांत करते हैं।			

भावार्थ - हे देवाधिदेव! जिस शरीर के मध्य में स्थित करके भव्यजन सदैव आपका ध्यान करते हैं, उस शरीर को ही आप क्यों नाश करा देते हो? जिस शरीर में आपका ध्यान किया जाता है, आपको उसकी रक्षा करनी चाहिये, परन्तु आप इससे विपरीत करते हैं। अथवा ठीक ही है कि मध्यस्थ महानुभाव विग्रह को शान्त कर देते हैं। अतः आप भी ध्यान के समय ध्याता के शरीर के मध्य में स्थित होकर विग्रह अर्थात् आपके ध्याता से शरीर छूट जाता है और आत्मा मुक्त हो जाती है॥ 16 ॥

गहन वन पर्वत भय विनाशक

भक्तों द्वारा ध्याये जाते, औदारिक तन मन्दिर में।
नाश देह का कैसे करते?, रहे आप जब अन्दर में॥
अथवा सच मध्यस्थ हुए जो, महापुरुष जब आते हैं।
मध्यभाग में आकर के वह, विग्रह भाव मिटाते हैं॥ 16 ॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ।।
औदारिक तन मंदिर में, मनः वेदि के अन्दर में।
जिनवर जहाँ बिठाया है, तीनों कालों ध्याया है।।
कैसे उसका नाश करें ? जिसमें प्रभु जी वास करें।
पुद्गलमय उस काया का, भव-भव की उस माया का।।
कारण तुम मध्यस्थ हुए, सदा-सदा को स्वस्थ हुए।
पक्षपात से परे हुए, वीतरागता भरे हुए।।
इस महान गुण के धारक, जीव मात्र के हित कारक।
महापुरुष जब आते हैं, विग्रह भाव मिटाते हैं।।
रचनाकर मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ।। 16।।

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हंणमो गहणवणभयपणासयाणं विज्जाहराणं।
मन्त्र-ॐ ह्रीं विग्रहनिवारकाय श्री पार्श्वनाथजिनाय नमः।

अभेद ध्यान का प्रभाव

आत्मा मनीषि-भि-रयं त्व-दभेद-बुद्धया,
ध्यातो जिनेन्द्र! भव-तीह भवत्-प्रभाव:।
पानीय-मप्यमृत-मित्यनु-चिन्त्य-मानं,
किं नाम नो विष-विकार-मपाकरोति॥

17

अन्वयार्थ –

जिनेन्द्र!	– हे जिनदेव!	मनीषिभि:	– बुद्धिमानों के द्वारा
त्वदभेदबुद्धया	– 'आप से अभिन्न' ऐसी बुद्धि से		
ध्यात:	– ध्यान किया गया		
अयम् आत्मा	– यह आत्मा		
भवत्प्रभाव:	– आप ही के समान प्रभाववाला		
भवति	– हो जाता है।		
अमृतम् इति अनुचिन्त्यमानम्	– यह अमृत है, इस तरह निरन्तर चिन्तवन किया जाने वाला		
पानीयम् अपि	– पानी भी	किम्	– क्या
विषविकारम्	– विष के विकार को		
नो अपा करोति नाम	– दूर नहीं करता? अर्थात् करता है।		

भावार्थ – हे जिनेन्द्रदेव! जैसे पानी में यह अमृत है, ऐसा विश्वास करने से मंत्रादि के संयोग से वह पानी भी विषविकारजन्य पीड़ा को नष्ट कर देता है। वैसे ही इस संसार में योगीजन अभेदबुद्धि से जब आपका ध्यान करते हैं तब वे अपने आत्मा को आपके समान चिन्तवन करने से आप ही के समान हो जाते हैं॥ 17॥

सर्प विष विनाशक

हे जिनवर निज आत्म रूप से, सदा सुधी जन ध्याते हैं।
परम ध्यान के ही प्रभाव से, तुम जैसे बन जाते हैं॥
अमृत के चिन्तन से जल क्या? अमृतमयी बन जाता ना।
निश्चय से फिर वह अमृत क्या? विष को दूर भगाता ना॥ 17॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ।।
निज आतम परमातम है, परमातम निज आतम है।
इस अभेद बुद्धि द्वारा, आत्मज्ञान शुद्धि द्वारा।।
इस जग में धीमानों ने, जिनवर के दीवानों ने।
आत्मरूप से ध्याया है, निज पर भेद मिटाया है।।
इसका अरे प्रभाव हुआ, आप सरीखा भाव हुआ।
यह अमृत है ऐसा ध्यान, अनुशीलन चिन्तन विज्ञान।।
अमृतमयी हो जाता है, विष को दूर भगाता है।
भले रहे वह गंगा जल, जिसमें है मंत्रों का बल।।
रचनाकर मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ।। 17।।

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हंणमो कुट्ठबुद्धिणासयाणं चारणाणं।
मन्त्र-ॐ ह्रीं आत्मस्वरूपध्येयाय श्री पार्श्वनाथजिनाय नमः।

जगत पूज्य परमात्मा

त्वामेव वीत-तमसं पर-वादि-नोऽपि,
नूनं विभो! हरि-हरादि-धिया प्रपन्नाः।
किं काच-कामलि-भिरीश! सितोऽपि शंखो,
नो गृह्यते विविध-वर्ण-विपर्ययेण?॥

18

अन्वयार्थ -

विभो!	- हे स्वामिन्!	परवादिनः अपि	- अन्यमतावलम्बी पुरुष भी
वीततमसम्	- अज्ञान अन्धकार से रहित	त्वाम् एव	- आपको ही
नूनम्	- निश्चय से	हरिहरादिधिया	- विष्णु महादेव आदि की कल्पना से
प्रपन्नाः	- प्राप्त होते हैं पूजते हैं।	किम्	- क्या
ईश!	- हे विभो!		

काचकामलिभिः - जिनकी आँख पर रंगदार चश्मा है, अथवा जिन्हें पीलिया रोग हो गया है, ऐसे पुरुषों के द्वारा

शङ्खः सितः अपि - शंख सफेद होने पर भी

विविधवर्णविपर्ययेण - तरह-तरह के विपरीत वर्णों से

नो गृह्यते - नहीं ग्रहण किया जाता? अर्थात् किया जाता है।

भावार्थ - हे त्रिलोकाग्रशिखामणे! जिस तरह पीलिया रोग वाला व्यक्ति सफेद वर्ण वाले शंख को भी पीला और नीला आदि अनेक रंग वाला मानता है उसी प्रकार अन्य मतावलम्बी पुरुष, रागद्वेषादि अन्धकार से रहित आपको भी ब्रह्मा, महेश आदि मानकर पूजते हैं॥ 18 ॥

युद्ध विग्रह विनाशक

केवलज्ञानी सच्चे ईश्वर, पर तुमको ऐसे जानें।
हरिहर ब्रह्मा विष्णु आदि में, अन्यमती तुमको मानें॥
रोग पीलिया हो जाने से, श्वेत वर्ण का शंख धवल।
दिखने लगता रंग विपर्यय, नीला पीला सा मिल जुल॥ 18॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ॥
मोह महातम नाशक हे! लोकालोक प्रकाशक हे!।
सच्चे देव जिनेश्वर हे! वीतराग परमेश्वर हे!॥
परवादि परमत वाले, मतवालों के मतवाले।
तुमको अपना कहते हैं, नाम अनेकों धरते हैं॥
कर्त्ता! धर्त्ता! शिव! शंकर! ब्रह्मा! विष्णु! प्रभु! हरि हर!।
दृष्टि विमल न रहने से, मिथ्या मल के बहने से॥
धवल वर्ण का शंख विमल, दिखता रंग अधिक मिल जुल।
दृष्टि दोष हो जाने से, रोग पीलिया आने से॥
रचनाकर मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ॥ 18॥

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हंणमो फणिसत्तिसोसयाणं पण्णसमणाणं।
मन्त्र-ॐ ह्रीं परवादिदेवस्वरूपध्येयाय श्री पार्श्वनाथजिनाय नमः।

अशोक वृक्ष प्रातिहार्य

धर्मोपदेश-समये सविधानु-भावा-,
दास्तां जनो भवति ते तरु रप्यशोकः।
अभ्युद्‌गते दिनपतौ समही-रुहोऽपि,
किं वा विबोध-मुपयाति न जीवलोकः॥

19

अन्वयार्थ -

धर्मोपदेशसमये	- धर्मोपदेश के समय	ते	- आपकी
सविधानुभावात्	- समीपता के प्रभाव से	जनः आस्ताम्	- मनुष्य तो दूर रहे
तरुः अपि	- वृक्ष भी	अशोकः	- अशोक=शोक रहित
भवति	- हो जाता है।	वा	- अथवा

दिनपतौ अभ्युद्‌गते 'सति' - सूर्य के उदित होने पर

समहीरुहः अपि जीवलोकः - वृक्षों सहित समस्त जीवलोक

किम्	- क्या	विबोधम्	- विकाश-विशेष ज्ञान को
न उपयाति	- प्राप्त नहीं होते? अर्थात् होते हैं।		

भावार्थ - हे पुण्यगुणोत्कीर्ते! धर्मोपदेश के समय आपकी समीपता के प्रभाव से मनुष्य की तो बात ही क्या वृक्ष भी अशोक हो जाता है। अथवा ठीक ही है कि सूर्य का उदय होने पर केवल मनुष्य ही विबोध को प्राप्त नहीं होते किन्तु कमल, पंवार, तोरई आदि वनस्पति भी अपने संकोचरुप निद्रा को छोड़कर विकसित हो जाती है॥ 19॥

नेत्र रोग नाशक

दिव्य ध्वनि की उस वेला में, तव सन्निधि में आकर के।
शोक रहित हो जाता तरुवर, चरण कमल रज पाकर के॥
सूर्योदय के हो जाने पर, वृक्ष सहित संसार अखिल।
फूल पत्र सब पुलकित होकर, विकसित होते हैं प्रतिपल॥ 19 ॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ।।
धर्म देशना के पल में, समवशरण के शुभथल में।
रत्न कांति से दमक रहे, मुक्ताओं से चमक रहे।।
पत्र लता शाखायें फल, तरु अशोक अत्यन्त विमल।
शोक रहित हो जाता है, चमत्कार हो जाता है।।
हुआ प्रभाव अचेतन पर, दूर रहे तब चेतन पर।
पूर्वोदय में होने से, सूर्योदय के होने से।।
अरे प्रफुल्लित कौन नहीं? जन-मन पुलकित कौन नहीं?।
वृक्ष सहित सारा संसार, हुआ प्रफुलित अपरम्पार।।
रचनाकर मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ।। 19।।

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हंणमो अक्खिगदणासयाणं आगासगामीणं।

मन्त्र-ॐ ह्रीं अशोकतरु प्रातिहार्योप शोभिताय श्री पार्श्वनाथजिनाय नमः।

पुष्प वृष्टि प्रातिहार्य

चित्रं विभो! कथ-मवाङ्-मुख-वृन्त-मेव,
विष्वक्-पतत्यविरला सुर-पुष्प-वृष्टिः।
त्वद्गोचरे सुमनसां यदि वा मुनीश!
गच्छन्ति नून-मध एव हि बन्धनानि।।

20

अन्वयार्थ -

विभो!	- हे प्रभो!	चित्रम्	- आश्चर्य है कि
विष्वक्	- सब और	अविरला	- व्यवधान रहित
सुरपुष्पवृष्टिः	- देवों के द्वारा की हुई फूलों की वर्षा		
अवाङ्मुखवृन्तमेव	- नीचे को बन्धन करके ही		
कथम्	- क्यों	पतति	- पड़ती है?
यदि वा	- अथवा ठीक है कि	मुनीश!	- हे मुनियों के नाथ!
त्वद्गोचरे	- आपके समीप	सुमनसाम्	- पुष्पों अथवा विद्वानों के
बन्धनानि	- डंठल अथवा कर्मों के बन्धन		
नूनम् हि	- निश्चय से	अधः एव गच्छन्ति	- नीचे को हो जाते हैं।

भावार्थ - हे धर्मसाम्राज्यनायक! देवों के द्वारा आपके ऊपर जो सघन पुष्पों कि वृष्टि की जाती है उनके डंठल नीचे की ओर और पांखुरी ऊपर की ओर रहती है, मानों वे डंठल इसी बात को सूचित करते हैं कि आपकी निकटता से भव्य जनों के कर्म बन्धन नीचे को हो जाते हैं अर्थात् नष्ट हो जाते हैं ॥20॥

उच्चाटन कारक

समवशरण में नभ से अविरल, पुष्प वृष्टि सुरगण करते।
चारों तरफ सुमन गिरते फिर, डण्ठल नीचे क्यों रहते?
अथवा सचमुच सु-मनस सज्जन, चरण कमल में आते हैं।
निश्चय से कर्मों के बन्धन, ढीले से हो जाते हैं॥ 20॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ॥
सुरगण नभ से वरषाते, पुष्पवृष्टि कर हरषाते।
समवशरण की सृष्टि भरे, कुसुम निरन्तर वृष्टि करें॥
हे जिनवर! आश्चर्य हुआ, ऐसा अद्भुत कार्य हुआ।
चारों तरफ सुमन गिरते, डण्ठल नीचे ही रहते॥
प्रभु चरणों में आते हैं, मानों ये बतलाते हैं।
अथवा सचमुच हे मुनिवर, पाया जिनने तेरा दर॥
सुमन-सु मन सम आते हैं, सुमन भाव अपनाते हैं।
उत्कर्षण हो धर्मों का, अपकर्षण हो कर्मों का॥
रचनाकर मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ॥ 20॥

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हंणमो गहिलगहाणसयाणं आसीविसाणं।
मन्त्र-ॐ ह्रीं पुष्पवृष्टि प्रातिहार्योप शोभिताय श्री पार्श्वनाथजिनाय नमः।

दिव्य ध्वनि प्रातिहार्य

स्थाने गभीर-हृदयोदधि-सम्भवाया:,
पीयूषतां तव गिर: समुदीरयन्ति।
पीत्वा यत: परम-संमद-संग-भाजो,
भव्या व्रजन्ति तरसाप्यजरामरत्वम्।।

21

अन्वयार्थ -

गभीरहृदयोदधिसंभवाया:	- गम्भीर हृदयरूपी समुद्र में पैदा हुई		
तव	- आपकी	गिर:	- वाणी के
पीयूषताम्	- अमृतपने को लोग	स्थाने	- ठीक ही
समुदीरयन्ति	- प्रकट करते हैं।	यत:	- क्योंकि
भव्या:	- भव्य जीव	'ताम्' पीत्वा	- उसे पीकर
परमसंमदसङ्गभाज: 'सन्त:'	- परम सुख के भागी होते हुए		
तरसा अपि	- बहुत ही शीघ्र		
अजरामरत्वम्	- अजर-अमरपने को	व्रजन्ति	- प्राप्त होते हैं।

भावार्थ - हे त्रिभवनपते! आपके अति उदार अगाध हृदयरूपी समुद्र से उत्पन्न हुई दिव्य वाणी (दिव्यध्वनि) को संसारी जीव सुधा समान बतलाते हैं सो यह बात सोलह आना सच है क्योंकि धर्मानुरागी भव्यजन आपकी उस अमृततुल्यवाणी का पान करके निराकुल अक्षय अनंत सुख को प्राप्त करते हुए अजर अमर पद को प्राप्त करते हैं॥ 21॥

शुष्क वन विकासक

हृदय सिन्धु से प्रकट हुए हैं, विशद अर्थ गम्भीर वचन।
अमृतवाणी कहाते क्यों वह, दिव्य ध्वनि मंगल प्रवचन?
क्योंकि प्रभो वचनों का प्याला, कर्णाञ्जुलि जो पान करें।
परम सुखों का अनुभव करके, भक्त अमर शिवधाम वरें॥ 21॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ।।
हे जिनेन्द्र! तव वचनों को, मंगलमयी प्रवचनों को।
अमृतवाणी कहते जीव, युक्ति संगत कथन अतीव।।
हृदय सिन्धु से प्रकट हुये, अमल अखण्डित अमिट हुए।
अनेकान्त रस भरे हुए, स्याद्वाद पर खरे हुए।।
कर्णाञ्जुलि से पीकर के, रसास्वाद अनुभव करके।
जग को परमानन्द हुआ, अजर अमर जग वृन्द हुआ।।
अमृत वचन तुम्हारे हैं, अमर बनाने वाले है।
भव्य जीव रसपान करें, अमर तत्त्व शिवधाम वरें।।
रचनाकर मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ।। 21।।

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हंणमो पुप्फिय तरुवत्तयराणं दिट्ठिविसाणं।
मन्त्र-ॐ ह्रीं अजरामर दिव्यध्वनि प्रातिहार्योप शोभिताय श्री पार्श्वनाथजिनाय नमः।

चामर प्रातिहार्य

स्वामिन् सुदूर-मवनम्य समुत्पतन्तो,
मन्ये वदन्ति शुचयः सुर-चाम-रौघाः।
येऽस्मै नतिं विदधते मुनिपुंगवाय,
ते नून-मूर्ध्व-गतयः खलु शुद्धभावाः॥

22

अन्वयार्थ –

स्वामिन्	–	हे प्रभो!	मन्ये	–	मैं मानता हूँ कि
सुदूरम्	–	नीचे को बहुत दूर तक	अवनम्य	–	नम्रीभूत हो कर
समुत्पतन्तः	–	ऊपर को जाते हुए	शुचयः	–	पवित्र
सुरचामरौघाः	–	देवों के चमर-समूह	वदन्ति	–	लोगों से कह रहे हैं कि
ये	–	जो			
अस्मै मुनिपुङ्गवाय	–	इन श्रेष्ठ मुनि को	नतिम्	–	नमस्कार
विदधते	–	करते हैं	ते	–	वे
नूनम्	–	निश्चय से			
शुद्धभावाः	–	विशुद्ध परिणामवाले होकर			
ऊर्ध्वगतयः	–	ऊर्ध्व गतिवाले			
'भवन्ति' खलु	–	हो जाते हैं, अर्थात् स्वर्ग-मोक्ष को प्राप्त होते हैं।			

भावार्थ – हे समवसरण लक्ष्मी सुशोभित देव! जब देवगण आपके ऊपर चँवर ढोरते हैं तब वे पहिले नीचे की ओर झुकते हैं और बाद में ऊपर की ओर जाते हैं मानों वे जनता को यह ही सूचित करते हैं कि जिनेन्द्र देव को झुक-झुक कर नमस्कार करने वाले व्यक्ति हमारे समान ही ऊपर को जाते हैं अर्थात् स्वर्ग या मोक्ष पाते हैं ॥22॥

मधुर फल दायक

नीचे से ऊपर को जाते, होले-होले डोल रहे।
रजत कान्ति से युक्त चँवर वह, सुरगण जिनको ढोल रहे॥
तीर्थंकर के पद कमलों में, शुद्ध भाव जो नमन करें।
मानों यह संदेशा देते, ऊर्ध्वलोक नर गमन करें॥ 22॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ।।
रजत कांति सम वर्ण धवल, इन्द्र ढुराते चमर विमल।
नीचे-ऊपर आते है, नम्र भाव अपनाते हैं।।
होले-होले डोल रहे, अपने मुख से बोल रहे।
हे स्वामिन्! यह मानूँ मैं, निश्चय ऐसा जानूँ मैं।।
पुण्डरीक पुरुषोत्तम को, देवोत्तम, सर्वोत्तम को।
परम देह चरमोत्तम को, तीर्थंकर परमोत्तम को।।
निर्मल भाव बनाकर के, जिन चरणों में आकर के।
भक्ति भाव जो नमन करें, ऊर्ध्वलोक में गमन करें।।
रचनाकार मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ।। 22।।

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हंणमो तरु-पत्तपणासयाणं उग्गतवाणं।
मन्त्र-ॐ ह्रीं चामरप्रातिहार्योपशोभिताय श्री पार्श्वनाथजिनाय नमः।

सिंहासन प्रातिहार्य

श्यामं गभीर-गिर-मुज्जवल-हेमरत्न,
सिंहासनस्थ-मिह भव्य-शिखण्डिनस् त्वाम्।
आलोकयन्ति रभसेन नदन्त-मुच्चैश्,
चामीकराद्रि-शिर-सीव नवाम्बु-वाहम्॥

23

अन्वयार्थ -

इह	- इस लोक में
श्यामम्	- श्याम वर्ण
गभीरगिरम्	- गम्भीर दिव्यध्वनि युक्त और
उज्जवलहेमरत्नसिंहासनस्थम्	- निर्मलस्वर्ण के बने हुए रत्नजड़ित सिंहासन पर स्थित
त्वाम्	- आपको
भव्यशिखण्डिनः	- भव्य जीवरूपी मयूर
चामीकराद्रिशिरसि	- स्वर्णमयी मेरुपर्वत की शिखर पर
उच्चैः नदन्तम्	- जोर से गर्जते हुए
नवाम्बुवाहम् इव	- नूतन मेघ की तरह
रभसेन	- उत्कण्ठापूर्वक
आलोकयन्ति	- देखते हैं।

भावार्थ - हे भगवन्! स्वर्ण निर्मित और रत्नजड़ित सिंहासन पर विराजमान और दिव्यध्वनि को प्रकट करता हुआ आपका सांवला शरीर ऐसा जान पड़ता है जैसे स्वर्णमयी सुमेरुपर्वत पर वर्षाकालीन नवीन काले मेघ गर्जना कर रहे हों। उन मेघों को जैसे मयूर बड़ी उत्सुकता से देखते हैं उसी प्रकार भव्य जीव आपको भी बड़ी उत्सुकता से देखते हैं ॥ 23 ॥

राज्य सन्मान दायक

सिंहासन पर आप विराजे, श्याम वर्ण तव सुन्दर तन।
मंगलमय खिरती जिनवाणी, भव्य जीव सुनते प्रवचन॥
ज्यों स्वर्णाचल उच्च शिखर पर, सावन बादल छाये हों।
ऊँचें स्वर से गर्जन सुनकर, वन मयूर हरषाये हों॥ 23॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ।।
स्वर्णमयी आसन्दी है, प्रभो! आपकी सन्निधि है।
रत्नखचित सिंहासन पर, तीर्थंकर के आसन पर।।
श्याम वर्ण तन शोभित है, तीन लोक मन मोहित है।
दिव्यध्वनि गम्भीर वचन, भव्य जीव सुनते प्रवचन।।
मानों अचल सुदर्शन पर, स्वर्णाचल मन्दरगिरि पर।
दिव्य छटा वरषायें हों, सावन बादल छाये हों।।
ऊँचे स्वर गर्जन करते, वन मयूर के मन हरते।
हर्ष विभोर करें दर्शन, देखें इकटक आकर्षण।।
रचनाकर मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ।। 23।।

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हंणमो बज्झय (बंधण) हरणाणं दित्ततवाणं।
मन्त्र-ॐ ह्रीं सिंहासन प्रातिहार्योप शोभिताय श्री पार्श्वनाथजिनाय नमः।

भामण्डल प्रातिहार्य

उद्गच्छता तव शिति-द्युति-मण्डलेन,
लुप्तच्-छदच्-छवि-रशोक-तरु-र्बभूव।
सान्-निध्यतोऽपि यदि वा तव वीतराग!,
नीरागतां व्रजति को न सचेतनोऽपि?॥

24

अन्वयार्थ –

उद्गच्छता	–	स्फुरायमान
तव	–	आपके
शितिद्युतिमण्डलेन	–	श्याम प्रभामण्डल के द्वारा
अशोकतरुः	–	अशोकवृक्ष
लुप्तच्छदच्छविः	–	कान्तिहीन पत्रों वाला
बभूव	–	हो गया,
यदि वा	–	अथवा
वीतराग!	–	हे रागद्वेष रहित देव!
तव सान्निध्यतः अपि	–	आपकी समीपता मात्र से ही
कः सचेतनः अपि	–	कौन पुरुष सचेतन होकर भी
नीरागताम्	–	राग ललाई से रहित पने अथवा अनुराग के अभाव को
न व्रजति	–	नहीं प्राप्त होता? अर्थात् अवश्य होता है।

भावार्थ – हे वीतरागदेव! जबकि आपके दैदीप्यमान भामण्डल की प्रभा से अशोक वृक्ष के पत्तों की लालिमा भी लुप्त हो जाती है, अर्थात् आपकी समीपता से जब वृक्षों का राग (लालिमा) भी जाता रहता है तब ऐसा कौन सचेतन पुरुष है जो आपके ध्यान द्वारा या आपकी वीतरागता को प्राप्त न होगा? ॥ 24 ॥

राज्य सम्मान दायक

फूट रहीं किरणें ऊपर को, नीलवर्ण भामण्डल से।
फीका पड़ता तरु अशोक वह, प्रभा-पुंज नवमंगल से॥
वीतराग के चरण कमल में, राग रंग क्या खोता ना?
अरे सचेतन कौन पुरुष वह, वीतराग सा होता ना? ॥ 24 ॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ॥
रश्मिपुञ्ज सा चमक रहा, आभाओं से दमक रहा।
कान्तिमान आभामण्डल, नव्य सृष्टि का नवमंगल॥
नीलवर्ण आभाओं से, कोटि-कोटि शोभाओं से।
तरु अशोक तब लुका-लुका, देख रहा है छुपा-छुपा॥
पीले-पीले पर्ण हुए, शोभाहीन विवर्ण हुए।
वीतराग के दर्शन से, गुण समूह आकर्षण से॥
राग-रंग ना खोता क्या? मन विराग ना होता क्या?।
वीतरागता लाता है, वीतराग बन जाता है॥
रचनाकर मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ॥ 24॥

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हंणमो रज्जदावयाणं तत्ततवाणं।
मन्त्र-ॐ ह्रीं भामण्डल प्रातिहार्य प्रभास्वते श्री पार्श्वनाथजिनाय नमः।

देव दुन्दुभि प्रातिहार्य

भोः भोः प्रमाद-मव-धूय भजध्व-मेन-,
मागत्य निर्वृति-पुरीं प्रति सार्थ-वाहम्।
एतन्-निवेदयति देव! जगत्-त्रयाय,
मन्ये नदन्-नभिनभः सुर-दुन्दु-भिस् ते।।

25

अन्वयार्थ –

देव!	– हे देव!
मन्ये	– मैं समझता हूँ कि
अभिनभः	– आकाश में सब ओर
नदन्	– शब्द करती हुई
ते	– आपकी
सुरदुन्दुभिः	– देवों के द्वारा बजाई गई दुन्दुभि
जगत्त्रयाय	– तीन लोक के जीवों को
एतत् निवेदयति	– यह सूचित कर रही है कि
भो भोः	– रे! रे! प्राणियो
प्रमादम् अवधूय	– प्रमाद को छोड़कर
निर्वृतिपुरीम् प्रति सार्थवाहम्	– मोक्षपुरी को ले जाने में सारथी
एवम्	– इन भगवान् को
आगत्य	– आकर
भजध्वम्	– भजो।

भावार्थ – हे मुक्तिसार्थवाहक! आकाश में जो देवों के द्वारा नगाड़ा बज रहा है वह मानों चिल्ला-चिल्लाकर तीनों लोकों के जीवों को सचेत ही कर रहा है कि जो मोक्ष नगरी की यात्रा को जाना चाहते हैं वे प्रमाद छोड़कर भगवान् पार्श्वनाथ की सेवा करें॥ 25 ॥

असाध्य रोग शामक

ऊँचे स्वर से करे घोषणा, दिग् दिगन्त नभमण्डल में।
तीन लोक आमंत्रण देती, सुर दुन्दुभि नभ जल थल में॥
अरे! प्राणियो आलस तजकर, जिन मण्डप में आ जाओ।
मुक्तिपुरी ले जाने वाले, पार्श्वनाथ के गुण गाओ॥ 25॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ।।
दिग्–दिगन्त नभ मण्डल में, गगन भेद धरणी तल में।
सुरदुन्दुभि जयघोषों से, ऊँचे स्वर उद्घोषों से।।
स्वर्ग निमंत्रण भेज रही, जग आमंत्रण भेज रही।
समवशरण में आने का, मोक्षपुरी ले जाने का।।
सुनो–सुनो हे जगवासी! मुक्तिरमा के अभिलाषी।
जिन मण्डप में आ जाओ, पार्श्वनाथ के गुण गाओ।।
महारथी यह शिव पथ के, यही सारथी शिवरथ के।
रथ में हमें बिठाते हैं, मुक्ति धाम ले जाते हैं।।
रचनाकर मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ।। 25।।

ऋद्धि–ॐ ह्रीं अर्हंणमो हिंडल मलणाणं महातवाणं।
मन्त्र–ॐ ह्रीं दुन्दुभि प्रातिहार्याय श्री पार्श्वनाथजिनाय नमः।

छत्रत्रय प्रातिहार्य

उद्द्योतितेषु भवता भुवनेषु नाथ!,
तारान्वितो विधुरयं विहताधिकार:
मुक्ताकलाप-कलितोल्-लसि-तात-पत्र,
व्याजात्-त्रिधा धृत-तनु-र्ध्रुव-मभ्युपेत:॥

26

अन्वयार्थ -

नाथ!	- हे स्वामिन्!
भवता भुवनेषु उद्योतितेषु	- आपके द्वारा तीनों लोकों के प्रकाशित होने पर
विहताधिकार	- अपने अधिकार से भ्रष्ट तथा
मुक्ताकलापकलितोल्ल सितातपत्रव्याजात्	- मोतियों के समूह से सहित अतएव शोभायमान सफेद छत्र के छल से
तारान्वित:	- ताराओं से वेष्टित
अयम् विधु:	- यह चन्द्रमा
त्रिधा धृततनु:	- तीन तरह के शरीर धारण कर
ध्रुवम्	- निश्चय से
'त्वाम्' अभ्युपेत:	- आपकी सेवा में प्राप्त हुआ है।

भावार्थ - हे अपूर्वतेजपुन्ज! आपने तीनों लोकों को प्रकाशित कर दिया अब चन्द्रमा किसे प्रकाशित करे? इसलिये वह तीन छत्र का वेश धारण कर अपना अधिकार वापिस लेने की इच्छा से आपकी सेवा में उपस्थित हुआ है। छत्रों में जो मोती लगे हैं वे मानों चन्द्रमा के परिवार स्वरूप तारागण ही हैं॥ 26 ॥

वचन सिद्धि प्रतिष्ठापक

प्रभो! आपके द्वारा ही जब, लोकालोक उजाला है।
शशि मण्डल फिर अरे काम क्या?, शोभित रहने वाला है॥
मुक्ताओं से सजधज कर ये, तीन छत्र तन रच आया।
अपनी कान्ति समुज्जवल हेतु, एक सहारा जिन पाया॥ 26॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ॥
प्रभो! आपके आने पर, ज्ञानोदय हो जाने पर।
हुये प्रकाशित लोक त्रय, अंधकार का हुआ विलय॥
तारागण रजनीनायक, चन्द्र बिम्ब शोभादायक।
कान्ति विहीन मलीन हुआ, अधिकारों से हीन हुआ॥
कहो भला वह कहाँ रहे, कान्तिमान वह जहाँ रहे।
मुक्ताओं से सज धज कर, छत्रत्रय तन रच-पच कर॥
रूप बदलकर आया है, एक सहारा पाया है।
तीन लोक के ईश्वर का, भूतनाथ जगदीश्वर का॥
रचनाकर मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ॥ 26॥

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हंणमो जयपदाइणं घोरतवाणं।
मन्त्र-ॐ ह्रीं छत्रत्रय प्रातिहार्य विराजिताय श्री पार्श्वनाथजिनाय नमः।

गन्धकुटी - तीन पीठिका

स्वेन प्रपूरित-जगत्-त्रय-पिण्डि-तेन,
कान्ति-प्रताप-यशसा-मिव सञ्चयेन।
माणिक्य-हेम-रजतप्रविनिर्मितेन,
साल-त्रयेण भगवन्-नभितो विभासि।।

27

अन्वयार्थ -

भगवन्	- हे भगवन्! आप
अभित:	- चारों ओर,
प्रपूरितजगत्त्रयपिण्डितेन	- भरे हुए जगत्त्रय के पिण्ड अवस्था को प्राप्त
स्वेन कान्तिप्रतापयशसाम् सञ्चयेन इव	- अपने कान्ति प्रताप और यश के समूह के समान शोभायमान
माणिक्यहेमरजतप्रविनिर्मितेन	- माणिक्य, स्वर्ण और चाँदी से बने हुए
सालत्रयेण	- तीनों कोटों से
विभासि	- शोभायमान होते हो।

भावार्थ - हे प्रताप पुंज! समवशरण भूमि में आपके चारों ओर माणिक्य, स्वर्ण और चाँदी के बने तीन कोट हैं वे मानों आपकी कान्ति, प्रताप और कीर्ति के वर्तुलाकार समूह ही हैं ॥ 27 ॥

वैर विरोध विनाशक

तीन लोक आपूरित गुण से, तीन पीठिका रची हुईं।
माणिक मणियाँ कंचन मण्डित, रजत कान्ति से खचित हुईं॥
गन्धकुटी पर आप विराजे, चारों ओर सुशोभित हो।
कान्ति प्रताप यशोगुण द्वारा, भव्यों के मन मोहित हो॥ 27॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ॥
समवशरण में गन्धकुटी, जिनवर गुण महिमा प्रकटी।
भगवन्! आप सुशोभित हैं, चारों दिशि मन मोहित हैं॥
कान्तिमान माणिक मणियाँ, तेजवन्त हीरक लड़ियाँ।
रजत पूर्ण संरचना है, तीन पीठिका रचना है॥
कान्तिमान मणियाँ रहतीं, कान्तिमान तुमको कहतीं।
स्वर्ण कहे तेजस्वी हो, कहता रजत यशस्वी हो॥
तीन लोक आपूरित हैं, गुण समूह से पूरित हैं।
महाप्रतापी! महिमाधर! तीर्थंकर पारस जिनवर॥
रचनाकर मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ॥ 27॥

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हंणमो खलदुट्ठणासयाणं घोरपरक्कमाणं।
मन्त्र-ॐ ह्रीं शालत्रय विराजिताय श्री पार्श्वनाथजिनाय नमः।

जिनशरण-परमशरण

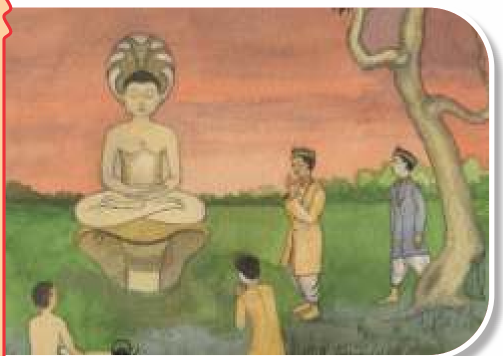

दिव्य-स्रजो जिन! नमत्-त्रि-दशाधिपाना-,
मुत्सृज्य रत्न-रचिता-नपि मौलि-बन्धान्।
पादौ श्रयन्ति भवतो यदि वा परत्र,
त्वत्संगमे सुमनसो न रमन्त एव॥

28

अन्वयार्थ -

जिन!	- हे जिनेन्द्र!
दिव्यस्रज:	- दिव्य पुष्पों की मालाएँ
नमत्रिदशाधिपानाम्	- नमस्कार करते हुए इन्द्रों के
रत्नरचितान् अपि मौलिबन्धान्	- रत्नों से बने हुए मुकुटों को भी
विहाय	- छोड़कर
भवत: पादौ श्रयन्ति	- आपके चरणों का आश्रय लेती हैं।
यदि वा	- अथवा ठीक है कि
त्वत्सङ्गमे 'सति'	- आपका समागम होने पर
सुमनस:	- पुष्प अथवा विद्वान् पुरुष
परत्र	- किसी दूसरी जगह
न एव रमन्ते	- नहीं रमण करते हैं।

भावार्थ - हे देवाधिदेव! आपको नमस्कार करते समय इन्द्रों के मुकुटों में लगी हुई दिव्य पुष्पमालायें आपके श्री चरणों में गिर जाती हैं वे पुष्प मालायें आपसे इतना प्रेम करती हैं कि उसके पीछे इन्द्रों के रत्न निर्मित मुकुटों को भी छोड़ देती हैं। अर्थात् आपके लिये बड़े-बड़े इन्द्र भी नमस्कार करते हैं॥28॥

यशः कीर्ति प्रसारक

सुर सुरेन्द्र पद वन्दन करते, नम्र मौलि की मालायें।
मुकुटों की मणियों को तजकर, शरण आपकी ही आयें॥
अथवा सुमन सुमन से प्राणी, प्रभो! शरण को वरण करें।
चरण छोड़कर अन्य न जाये, तव सन्निधि में रमण करें॥ 28 ॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ।।
नम्र हुए अमरेन्द्रों के, शीष झुके सुर वृन्दों के।
मुकुटों में मण्डित मणियाँ, रत्नों से चित्रित लड़ियाँ।।
दिव्य मौलि की मालायें, जिनवर के चरणों आयें।
मुकुट छोड़कर आश्रय लें, प्रभो पाद का पाश्रय लें।।
सत्य बात कहता स्वामी, वीतराग! जिन! निष्कामी!।
अच्छे मन वाले प्राणी, भव्य जीव सम्यग्ज्ञानी।।
एक ठिकाना पाते हैं, और कहीं न जाते हैं।
पार्श्वनाथ की शरण वरें, चरण कमल में रमण करें।।
रचनाकर मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ।। 28।।

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हं णमो उवदववज्जणाणं घोरगुणाणं।
मन्त्र-ॐ ह्रीं पुष्पमालानिषेचित चरणाम्बुजाय अर्हते श्री पार्श्वनाथजिनाय नमः।

भवतारक परमात्मा

त्वं नाथ! जन्म-जलधे-र्विपराङ्-मुखोऽपि,
यत्-तारयस्यसुमतो निज-पृष्ठ-लग्नान्।
युक्तं हि पार्थिव-निपस्य सतस्-तवैव,
चित्रं विभो! यदसि कर्म-विपाक-शून्यः॥

29

अन्वयार्थ -

नाथ!	- हे स्वामिन्!	त्वम्	- आप
जन्मजलधेः	- संसाररूप समुद्र से		
विपरांगमुखः	- पराङ्मुख होते		
अपि सन्	- हुए भी		
यत्	- जो	निजपृष्ठलग्नान्	- अपने पीछे लगे हुए अनुयायी
असुमतः	- जीवों को	तारयसि	- तार देते हो,
'तत्'	- वह		
पार्थिवनिपस्य सतः	- राजाधिराज अथवा मिट्टी के पके हुए घड़े की तरह परिणमन करने वाले		
तव	- आपको	युक्तम् एव	- उचित ही हैं। परन्तु
विभो!	- हे प्रभो!	'तत्' चित्रम्	- वह आश्चर्य की बात है
यत्	- जो आप	कर्मविपाकशून्यः असि	- कर्मों के उदयरूप पाक क्रिया से रहित हो।

भावार्थ - हे कृपालु देव! जिस तरह जल में अधोमुख पक्का घड़ा अपनी पीठ पर आरूढ़ मनुष्यों को जलाशय से पार कर देता है, उसी तरह भव समुद्र से पराङ्मुख हुए आप अपने अनुयायी भव्य जनों को तार देते हो, सो यह उचित ही है। परन्तु घड़ा तो जलाशय से वही पार कर सकता है जो विपाकसहित है; परन्तु आप तो विपाक रहित होकर तारते हैं। यह आपकी अचिन्त्य महिमा है॥ 29॥

आकर्षण कारक

भवसागर से विमुख आप हो, फिर भी भव से पार करें।
पद अनुशरणा करने वाले, भव्यों का उद्धार करें॥
उन्मुख होकर कुंभ भला जब, तिरता जाता सागर है।
अरे आप निष्पाक प्रभो हो, पाक हुआ वह गागर है॥ 29 ॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ।।
भव सागर से नाथ विमुख, हुये आपके जो अनुमुख।
पृष्ठभाग रहने वाले, अनुशरणा करने वाले।।
ऋषि-मुनिगण अनगारों को, श्रावक गण सागारों को।
जिनवर पार लगाते हैं, तारणहार कहाते हैं।।
कुम्भकार का कुम्भ भला, अग्निपाक में पका चला।
उन्मुख होकर गागर वह, पार लगाता सागर वह।।
अरे! कुम्भ तो पाक हुए, और आप निष्पाक हुए।
फिर भी तो भव तारक हो, सचमुच विस्मय कारक हो।।
रचनाकार मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ।। 29।।

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हं णमो देवाणुप्पियाणं घोरगुण बंभचारीणं।
मन्त्र-ॐ ह्रीं संसार सागर तारकाय श्री पार्श्वनाथजिनाय नमः।

विरोधाभास अलंकार स्तुति

विश्वेश्वरोऽपि जनपालक! दुर्गतस्त्वं,
किं वाक्षर-प्रकृति-रप्यलिपिस्-त्वमीश।
अज्ञान-वत्यपि सदैव कथंचि-देव,
ज्ञानं त्वयि स्फुरति विश्व-विकास-हेतु॥

30

अन्वयार्थ –

जनपालक	–	हे जीवों के रक्षक!
त्वम्	–	आप
विश्वेश्वरः अपि दुर्गतः	–	तीन लोक के स्वामी होकर भी दरिद्र हैं,
किं वा	–	और
अक्षरप्रकृतिः अपि त्वम् अलिपिः	–	अक्षर स्वभाव होकर भी लेखन-क्रिया से रहित हैं।
ईश	–	हे स्वामिन्!
कथंचित्	–	किसी प्रकार से
अज्ञानवति अपि त्वयि	–	अज्ञानवान् होने पर भी आप में
विश्वविकासहेतु ज्ञानम् – सदा एव स्फुरति	–	सब पदार्थों को प्रकाशित करने वाला ज्ञान हमेशा स्फुरायमान रहता है।

भावार्थ – हे जगपालक! आप तीनों लोकों के स्वामी होकर भी निर्धन हैं अथवा अक्षर स्वभाव होकर भी लेखन क्रिया रहित हैं, इसी प्रकार से अज्ञानी होकर भी त्रिकाल और त्रिलोकवर्ती पदार्थों के जानने वाले ज्ञान से विभूषित हैं (जिस अलंकार में शब्द से विरोध प्रतीत होने पर भी वस्तुतः विरोध नहीं होता उसे विरोधाभास अलंकार कहते हैं। इस श्लोक में इसी अलंकार का आश्रय लेकर वर्णन किया गया है। उपर्युक्त अर्थ में दिखने वाले विरोध का परिहार इस प्रकार किया है – हे भगवन्! आप त्रिलोकीनाथ हैं और कठिनाई से जाने जा सकते हैं। अविनश्वर स्वभाव वाले होकर भी आकार रहित हैं अज्ञानी मनुष्यों की रक्षा करने वाले हैं आप में सदा केवल ज्ञान प्रकाशित रहता है॥ 30 ॥

असंभव कार्य साधक

तीन लोक के स्वामी होकर, निर्धन क्यों कहलाते हो?
अविनाशी अक्षर विधि वाले, फिर भी लिख ना पाते हो॥
अबुधवन्त होने पर भी तुम, केवल बोध प्रकाशित हो।
हे जनपालक! पार्श्व जिनेश्वर! करते विश्वप्रकाशित हो॥ 30॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ।।
धर्म तीर्थ सञ्चालक हे! जगती के जनपालक हे!।
तीन लोक के स्वामी हो, फिर भी दुर्गत नामी हो।।
सिद्ध, सनातन, शाश्वत हो, निराकार गुण भास्वत हो।
अविनाशी, अक्षर, अन्वित, फिर भी तुम हो लेख रहित।।
अज्ञ जनों के रक्षक हो, अखिल सृष्टि संरक्षक हो।
अबुध-वन्त कहलाते हो, फिर भी लोक जताते हो।।
तीनों लोकों कालों को, द्रव्य-अनंतों चालों को।
युगपत् जिनवर जान रहे, युगपद जिनवर ध्यान रहे।।
रचनाकर मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ।। 30।।

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हं णमो अपुव्वबलपदाईणं आमोसहिपत्ताणं।
मन्त्र-ॐ ह्रीं अद्भुतगुणविराजितरूपाय श्री पार्श्वनाथजिनाय नमः।

उपसर्ग वर्णन

प्राग्भार-सम्भृत-नभांसि रजांसि रोषा,
दुत्था-पितानि कमठेन शठेन यानि।
छायापि तैस् तव न नाथ! हता हताशो,
ग्रस्तस् त्वमी-भि-रय-मेव परं दुरात्मा।।

31

अन्वयार्थ -

नाथ	-	हे स्वामिन्!	शठेन कमठेन	-	दुष्ट कमठ द्वारा
रोषात्	-	क्रोध से			
प्राग् भारसम्भृतनभांसि	-	सम्पूर्ण रूप से आकाश को व्याप्त करने वाली			
यानी	-	जो	रजांसि	-	धूल
उत्थापितानि	-	आपके ऊपर उड़ाई गई थी			
तैः तु	-	उससे तो	तव	-	आपकी
छाया अपि	-	छाया भी	न हता	-	नहीं नष्ट हुई थी,
परम्	-	किन्तु	अयमेव दुरात्मा	-	यही दुष्ट
हताशः	-	हताश हो	अमीभिः	-	कर्मरूप रजों से
ग्रस्तः	-	जकड़ा गया था।			

भावार्थ - हे जितशत्रो! आपके पूर्व भव के बैरी कमठ ने आप पर भारी धूल उड़ा कर उपसर्ग किया परन्तु वह धूलि आपके शरीर की छाया भी नष्ट नहीं कर सकी, प्रत्युत तिरस्कार की दृष्टि से किया उसका यह कार्य तो दूर रहे किन्तु विफल मनोरथ हताश व दुष्ट कमठ का जीव ही रज कणों (पापकर्मों) से कस कर जकड़ा गया ॥31॥

शुभाशुभ प्रश्न दर्शक

अवनि तल से धूल उड़ाकर, नभ मण्डल को भरा दिया।
प्रलयकाल सी चला आँधियाँ, जल-थल-नभ को डरा दिया॥
क्रोध भाव से कमठासुर ने, दुर्द्धर जो उपसर्ग किया।
प्रभु छाया भी ना ढक पाया, स्वयं कर्म से लिप्त हुआ॥ 31॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ॥
रुष्ट-दुष्ट कमठासुर ने, धृष्ट-भृष्ट कमठासुर ने।
मिथ्यातम की शठता से, जन्म-जन्म की हठता से॥
प्रलयकाल की आँधी सा, तूफाँ चला मुदा धी सा।
अवनी अम्बर डरा दिया, धूल उड़ाकर भरा दिया॥
शम्बर की रजमय माया, ढक न सकी प्रभु की छाया।
दुर्द्धर अति उपसर्ग हुआ, तुमने तो अपवर्ग लिया॥
लेकिन उसकी भूलों ने, पापकर्म की धूलों ने।
जकड़ लिया था शम्बर को, पकड़ लिया था शम्बर को॥
रचनाकार मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ॥ 31॥

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हं णमो इट्ठविण्णत्तिदावयाणं खेलोसहिपत्ताणं।
मन्त्र-ॐ ह्रीं रजोवृष्ट्यक्षोभ्याय श्री पार्श्वनाथजिनाय नमः।

उपसर्ग वर्णन

यद्-गर्ज-दूर्जित-घनौघ-मदभ्र-भीम,
भ्रश्यत्-तडिन्-मुसल-मांसल-घोर-धारम्।
दैत्येन मुक्तमथ दुस्तर - वारि दध्रे,
तेनैव तस्य जिन! दुस्तर-वारि-कृत्यम्॥

32

अन्वयार्थ -

अथ	- और
जिन	- हे जिनेश्वर!
दैत्येन	- उस कमठ ने
गर्जदूर्जितघनौघम्	- खूब गर्ज रहे हैं बलिष्ठ-मेघ-समूह जिसमें
भ्रश्यत्तडित्	- गिर रही हैं बिजली जिसमें और
मुसलमांसलघोरधारम्	- मूसल के समान है बड़ी मोटी धारा जिसमें ऐसा तथा
अदभ्रभीम	- अत्यन्त भयङ्कर
यत्	- जो
दुस्तरवारि	- अथाह जल
मुक्तम्	- वर्षाया था
तेन	- उस जलवृष्टि
तस्य एव	- उस कमठ ने ही अपने लिये
दुस्तरवारिकृत्यम्	- तीक्ष्ण तलवार का काम अर्थात् व्रण कर लिया था।

भावार्थ - हे महाबल! आप पर मूसलाधार पानी वर्षा कर कमठ ने जो महान उपसर्ग किया था उससे आपका क्या बिगड़ा? परन्तु उसी ने स्वयं अपने लिये तलवार का घाव कर लिया। अर्थात् ऐसा खोटा कृत्य करने के कारण स्वयं उसने घोर पाप कर्मों का बन्ध कर लिया॥32॥

दुष्टता प्रतिरोधी

गर्जन करते मेघ भयंकर, बिजली तड़-तड़ तड़क रहीं।
मानो आग बरषती नभ से, ऐसे कड़-कड़ कड़क रहीं॥
मूसलधारा वारिष करके, तुम पर जो अपकार किया।
कमठासुर ने अपने ऊपर, तलवारों सा वार किया॥ 32 ॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ॥
कड़-कड़ कड़-कड़ कड़क रहीं, तड़तड़ तड़-तड़ तड़क रहीं।
मेघ बिजलियाँ ऊपर से, अग्नि वरषे अम्बर से॥
पर्वत गिर-गिर टूट पड़े, कानों पर्दे फूट पड़े।
भयकारी घन गर्जन से, विद्युत रूप विसर्जन से॥
मूसलधार अटूट पड़े, मानो जलधर फूट पड़े।
बड़े-बड़े ओले गिरते, मानों पत्थर ही पड़ते॥
भाँति-भाँति दुष्कृत्य किये, घोर कर्म के कृत्य किये।
कमठ शत्रु बनकर आया, किञ्चित नहीं डिगा पाया॥
रचनाकर मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ॥ 32॥

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हं णमो अट्ठमदणासयाणं जल्लोसहिपत्ताणं।

मन्त्र-ॐ ह्रीं कमठदैत्यमुक्तवारिधाराक्षोभ्याय श्री पार्श्वनाथजिनाय नमः।

उपसर्ग वर्णन

ध्वस्-तोर्ध्व-केश-विकृताकृति-मर्त्य-मुण्ड-,
प्रालम्ब-भृद्-भयद-वक्त्र-विनिर्य-दग्निः।
प्रेतव्रजः प्रति भवन्त - मपीरितो यः
सोऽस्याऽभवत् प्रति-भवं भव-दुःख-हेतुः॥

33

अन्वयार्थ -

तेन अनुसरेण	-	उस असुर के द्वारा
ध्वस्तोर्ध्वकेशविकृताकृति-मर्त्यमुण्डप्रालम्बभृद्	-	मुँडे हुए तथा विकृत आकृतिवाले नर कपालों की माला धारण करने वाला और
भयदवक्त्रविनिर्यदग्निः	-	जिसके भयङ्कर मुख से अग्नि निकल रही है, ऐसा
यः	-	जो
प्रेतव्रजः	-	पिशाचों का समूह
भवन्तम् प्रति	-	आपके प्रति
ईरितः	-	प्रेरित किया गया था-दौड़ाया गया था
सः	-	वह
अस्य	-	उस असुर को
प्रतिभवम्	-	प्रत्येक भव में
भवदुःखहेतुः	-	संसार के दुःखों का कारण
अभवत्	-	हुआ था।

भावार्थ - हे उपसर्गविजयी! कमठ के जीव ने आपको कठोर तपस्या से चलायमान करने की खोटी नियत से जो विकराल पिशाचों का समूह आपकी तरफ उपद्रव करने के लिये दौड़ाया था, उससे आपका कुछ भी बिगाड़ नहीं हुआ परन्तु उस क्रूर कमठ के अनेक खोटे कर्मों का बन्ध हुआ, जिससे उसे भव-भव में असह्य यातनाएँ झेलनी पड़ी ॥ 33 ॥

प्राकृतिक आपदा नाशक

भूत-पिशाचों को भेजा था, महा भयंकर रूप लिए।
निकल रही मुख से ज्वालायें, इधर-उधर को बाल किए॥
करें उपद्रव दौड़-दौड़ कर, अति भीषण उपसर्गों से।
अरे कमठ को बाँध गये वे, भव दुःखों के कर्मों से॥ 33॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ।।
भूत-पिशाचों व्यन्तर को, लेकर जन्तर-मन्तर को।
महा भयंकर रूपों को, भेजा निकट कुरूपों को।।
नरमुण्डों की मालायें, लम्बी-लम्बी लटकायें।
निकलें मुख से ज्वालायें, मानो विश्व निगल जायें।।
काले-काले बालों से, सर्पों जैसी चालों से।
मानों अजगर लटक रहे, इधर-उधर फण पटक रहे।।
खोटे-खोटे कर्मों का, महा भयंकर मर्मों का।
कमठासुर ने बन्ध किया, भव-भव को दुर्बन्ध किया।।
रचनाकर मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ।। 33।।

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हं णमो असणि पातादिवारयाणं सव्वोसहिपत्ताणं।
मन्त्र-ॐ ह्रीं कमठदैत्यप्रेषित भूतपिशाचाद्यक्षोभ्याय श्री पार्श्वनाथजिनाय नमः।

धन्यवाद आराधक!

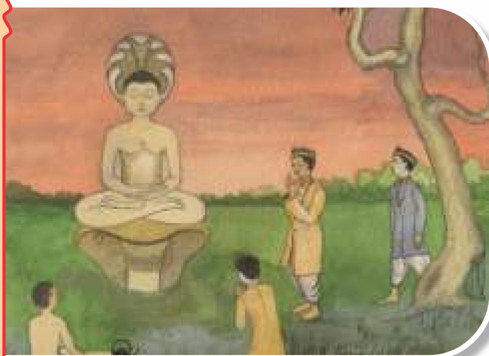

धन्या स्त एव भुवनाधिप! ये त्रिसन्ध्य-,
माराधयन्ति विधिवद् विधुतान्यकृत्याः।
भक्त्योल्-लसत्-पुलक-पक्ष्मल-देह-देशाः,
पादद्वयं तव विभो! भुवि जन्मभाजः।।

34

अन्वयार्थ –

भुवनाधिप	– हे तीन लोक के नाथ!	ये	– जो
जन्मभाजः	– प्राणी,		
विधुतान्यकृत्याः	– जिन्होंने अन्य काम छोड़ दिये हैं और		
भक्त्या	– भक्ति से		
उल्लसत् पुलकपक्ष्मलदेहदेशाः	– प्रकट हुए रोमाञ्चकों से जिनके शरीर का प्रत्येक अवयव व्याप्त हैं, ऐसे		
सन्ताः	– होते हुए	विधिवत्	– विधिपूर्वक
त्रिसन्ध्यम्	– तीनों सन्धि कालों में	तव	– आपके
पादद्वयम् आराधयन्ति	– चरणयुगल की आराधना करते हैं।		
विभो	– हे स्वामिन्!	भुवि	– संसार में
ते एव	– वे ही	धन्याः	– धन्य हैं।

भावार्थ – हे त्रिलोकीनाथ! जो प्राणी भक्ति से उत्पन्न रोमांचों से पुलकित होकर सांसारिक अन्य कार्यों को छोड़कर तीनों संध्याओं में विधिपूर्वक आपके चरणों की आराधना करते हैं संसार में वे ही धन्य हैं ॥ 34 ॥

भूत बाधा निवारक

तीन लोक के स्वामी जिनवर! भक्त आपके निर्मल मन।
तजकर के गृह जंजालों को, करें चरण युग आराधन॥
रोम-रोम रोमांचित होकर, तीनों काल विधानों से।
धन्य-धन्य वे मनुज धरा पर, भक्ति करें सुर-गानों से॥ 34॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ।।
धन्य-धन्य वे धरती पर, धन्य-धन्य वे जीवन भर।
अखिल विश्व के वे प्राणी, आत्म विवेकी विज्ञानी।।
तज संकल्प-विकल्पों को, झूठे भव के जल्पों को।
चिन्ताओं जंजालों को, कामकाज घरवालों को।।
रोम-रोम रोमाञ्चित हो, भक्ति भाव से सिञ्चित हो।
तीनों काल विधानों से, आगम के सरधानों से।।
श्रृद्धास्पद पद यमलों की, जिनवर के पद कमलों की।
करते आराधन वन्दन, उनको मेरा अभिनन्दन।।
रचनाकार मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ।। 34।।

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हं णमो भूतबाहा वहारयाणं विट्ठोसहिपत्ताणं।
मन्त्र-ॐ ह्रीं त्रिकालपूजनीयाय श्री पार्श्वनाथजिनाय नमः।

नाम स्मरण-विपदा नाश

अस्मिन्-नपार-भव-वारि-निधौ मुनीश!,
मन्ये न मे श्रवण-गोचरतां गतोऽसि।
आकर्णिते तु तव गोत्र-पवित्र-मन्त्रे,
किं वा विपद्-विषधरी सविधं समेति?॥

35

अन्वयार्थ –

मुनीश	– मुनीन्द्र! आप	मन्ये	– मैं समझता हूँ कि
अस्मिन् अपारभववारिनिधौ	– इस अपार संसार रूप समुद्र में कभी भी		
मे	– मेरे		
श्रवणगोचरताम् न गतः असि	– कानों की विषयता को प्राप्त नहीं हुए हो। क्योंकि		
तु	– निश्चय से	तव गोत्रपवित्रमन्त्रे	– आपके पवित्र नामरूपी मन्त्र के
आकर्णिते 'सति'	– सुने जाने पर	विपद्विषधरी	– विपत्तिरूपी नागिन
किम् वा	– क्या	सविधम्	– समीप
समेति	– आती? अर्थात् नहीं आती।		

भावार्थ – हे संकटमोचन! इस अपार संसार सागर में मैंने आपका नाम नहीं सुना अर्थात् आपकी उत्तम कीर्ति मेरे कानों द्वारा नहीं सुनी गई, क्योंकि निश्चय से यदि आपका नामरूपी पवित्र मन्त्र मैंने सुना होता तो क्या विपत्ति रूपी नागिन मेरे समीप आती? अर्थात् कभी न आती॥35॥

मृगी रोग विनाशक

संकट मोचन पार्श्वनाथ हे! इस अपार भव वारिधि में।
नहीं सुना है नाम आपका, विपदाओं की जलनिधि में॥
सुन लेता यदि नाम मंत्र तो, विपदाओं की ये नागिन।
सचमुच ऐसा मान रहा मैं, कभी पास क्या आती जिन? ॥ 35 ॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ।।
हे मुनीश! मैं मान रहा, निश्चय ऐसा जान रहा।
इस अपार भव वारिधि में, विपदाओं की जलनिधि में।।
संकट हरण जिनेश्वर का, अंतिम शरण जिनेश्वर का।
ऋद्धि-सिद्धि प्रदाता का, पारस नाथ विधाता का।।
नाम मंत्र भी ध्याया ना, कानों कभी सुनाया ना।
हर आपद हरने वाला, सुख सम्पद वरने वाला।।
नाम मंत्र यदि सुन लेता, सच्चे मन से गुन लेता।
विपदाओं की ये नागिन, कभी पास क्या आती जिन्?।।
रचनाकर मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ।। 35।।

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हं णमो मिगीरोग वारयाणं मणबलीणं।
मन्त्र-ॐ ह्रीं आपन्निवारकाय श्री पार्श्वनाथजिनाय नमः।

जिनपूजा से मनोरथ सिद्ध

जन्मातरेऽपि तव पादयुगं न देव!
मन्ये मया महित-मीहित-दान-दक्षम्।
तेनेह जन्मनि मुनीश! पराभवानां,
जातो निकेतन-महं मथिताशयानाम्॥

36

अन्वयार्थ –

देव	– हे देव!	मन्ये	– मैं मानता हूँ कि मैंने
जन्मान्तरे अपि	– दूसरे जन्म में भी	ईहितदानदक्षम्	– इच्छित फल देने में समर्थ
तव पादयुगम्	– आपके चरण युगल		
न महितम्	– नहीं पूजे	तेन	– उसी से
इह जन्मनि	– इस भव में	मुनीश	– हे मुनीश!
अहम्	– मैं	मथिताशयानाम्	– हृदय-भेदी
पराभवानाम्	– तिरस्कारों का	निकेतनम्	– घर
जातः	– हुआ हूँ।		

भावार्थ – हे देव! मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि पहले अनेक जन्मों में मैंने मनोवांछित फलों के देने में पूर्ण समर्थ आपके पवित्र चरणों की पूजा नहीं की, इसी से इस जन्म में मैं मर्मभेदी तिरस्कारों का आगार बना हुआ हूँ॥36॥

मानव वशीकरण

जिनवर तेरे चरण युगल को, कभी नहीं मैंने पूजा।
मनोकामना वरद कुशल जो, पूजा सम फल ना दूजा॥
चिंतामणि व कल्पवृक्ष सम, चरण नहिं पूजे निष्काम।
इस कारण ही हे मुनीश! मैं हुआ पराभव का हि धाम॥ 36॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ।।
चिन्तामणि जिन चरणाम्बुज, कल्पवृक्ष जिन पादाम्बुज।
कामधेनु सम देते फल, इच्छा पूरित महा कुशल।।
मुनिवर पद अम्भोजों की, जिनवर पाद सरोजों की।
जन्म-जन्म जन्मान्तर में, काल अनादिक अंतर में।।
निर्मल भावों वन्दन से, अथवा अक्षत चन्दन से।
कभी नहीं की जिन पूजा, पूजा सम फल ना दूजा।।
बिन पद पूजे मिले विपद, केवल आपद ही पद-पद।
मेरा हुआ पराभव है, एक बार ना भव भव है।।
रचनाकर मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ।। 36।।

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हं णमो वालवसीयरकुसलाणं वचणबलीणं।
मन्त्र-ॐ ह्रीं सर्वपराभवहरणाय श्री पार्श्वनाथजिनाय नमः।

जिनदर्शन से संकट दूर

नूनं न मोह – तिमिरावृत – लोचनेन,
पूर्वं विभो! सकृ–दपि प्रविलोकितोऽसि।
मर्माविधो विधुरयन्ति हि मा–मनर्थाः,
प्रोद्यत्–प्रबन्ध–गतयः कथ–मन्य–थैते!॥

37

अन्वयार्थ –

विभो – हे स्वामिन्!

मोहतिमिरावृत-लोचनेन – मोहरूपी अन्धकार से ढँके हुए हैं नेत्र जिसके ऐसे

मया	– मेरे द्वाराआप	पूर्वम्	– पहले कभी
सकृद् अपि	– एक बार भी	नूनम्	– निश्चय से

प्रविलोकितःन असि – अच्छी तरह अव–लोकित नहीं हुए हो– अर्थात् मैंने आपके दर्शन नहीं किये।

अन्यथा हि	– नहीं तो जो	प्रोद्यत्प्रबन्धगतयः	– जिनमें कर्मबन्ध की गति बढ़ रही है ऐसे
ते	– ये	मर्माविधः	– मर्मभेदी
अनर्थाः	– अनर्थ	माम्	– मुझे
कथम्	– क्यों	विधुरयन्ति	– दुःखी करते?

भावार्थ – हे कष्टनिवारकदेव! मोहरूपी सघन अन्धकार से आच्छादित नेत्र सहित मैंने पूर्वजन्मों में कभी एक बार भी निश्चयपूर्वक आपको अच्छी तरह नहीं देखा, ऐसा मुझे दृढ़ विश्वास है। यदि मैंने कभी आपका दर्शन किया होता तो उत्कट संसार परम्परा के वर्द्धक मर्मभेदी अनर्थ मुझे क्यों दुःखी करते? क्योंकि आपके दर्शन करने वालों को कभी कोई भी अनर्थ दुःख नहीं पहुँचा सकता॥ 37॥

भूत बाधा निवारक

मोह महातम के पटलों से, ढके हुये थे नेत्र विमल।
इसीलिये हे प्रभु आपको, देखा नहीं कभी इकपल॥
दर्शन जो तेरा कर लेता, उदयागत कर्मों के बन्ध।
क्या मुझको दुख दे सकते थे, क्षण भर में होते निर्बन्ध॥ 37॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ।।
वीतराग सर्वज्ञ विभो, कष्ट निवारक जगत विभो।
पहिले देखा कहीं नहीं, एक बार भी कभी नहीं।।
मिथ्यातम अंधियारे से, मोहकर्म कजरारे से।
ढके हुये दोनों लोचन, किया कभी न अवलोकन।।
कर लेता तेरा दर्शन, वर लेता सम्यग्दर्शन।
तो निश्चय इन कर्मों के, महा भयंकर मर्मों के।।
बन्ध कभी भी होते क्यों? कर्मोदय दुःख देते क्यों?।
मैं दुखियारा होता क्यों? जन्म जन्म दुख रोता क्यों?।।
रचनाकर मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ।। 37।।

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वराज-पयावसीयरण कुसलाणं कायबलीणं।
मन्त्र-ॐ ह्रीं सर्वमनर्थमथनाय श्री पार्श्वनाथजिनाय नमः।

भाव शून्य क्रिया निष्फल

आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षतोऽपि,
नूनं न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या।
जातोऽस्मि तेन जनबान्धव! दु:खपात्रं,
यस्मात्-क्रिया: प्रतिफलन्ति न भावशून्या:।।

38

अन्वयार्थ -

जनबान्धव - हे जगद्बन्धो! मया - मेरे द्वारा आप
आकर्णित - श्रवण भी हुए हैं महित:अपि - पूजित भी हुए हैं और
निरीक्षित: अपि - अबलोकित भी हुए हैं अर्थात् मैंने आपका नाम भी सुना है, पूजा भी की है और दर्शन भी किये हैं, फिर भी
नूनम् - निश्चय है कि भक्त्या - भक्तिपूर्वक
चेतसि - चित्त में न विधृत:असि - धारणा नहीं किये गये हो।
तेन - उसी से
दु:खपात्रम् जात:अस्मि - दु:खों का पात्र हो रहा हूँ
यस्मात् - क्योंकि भावशून्या: - भाव रहित
क्रिया: - क्रियाएँ न प्रतिफलन्ति - सफल नहीं होती।

भावार्थ - हे जनबान्धव! पहिले किन्हीं जन्मों में मैंने यदि आपका नाम भी सुना हो आपकी पूजा भी की हो तथा आपका दर्शन भी किया हो तो भी यह निश्चय है कि मैंने भक्तिभाव से आपको अपने हृदय में कभी भी धारण नहीं किया, इसलिये तो अब तक इस संसार में मैं दुखों का पात्र ही रहा, क्योंकि भाव रहित क्रियाएँ फलदायक नहीं होती ॥ 38 ॥

असह्य कष्ट नाशक

नाम सुना पूजायें भी की, जिनवर दर्शन किए सदा।
भक्ति भाव से हृदय कमल में, प्रभो बिठाया नहीं कदा॥
मुक्ति फल वह दे नहीं पाती, भाव रहित करनी हरपल।
इसीलिए दुःखपात्र हुआ मैं, ज्यों पत्थर पर बीज विफल॥ 38॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ॥
जगदबन्धु! जिनवर जिन का! जन बांधव, जिन अर्हन् का!।
तीर्थंकर चौबीसों का, सच्चे देव मुनीशों का॥
सुरतालों संगीतों से, वाद्य यंत्र मय गीतों से।
नाम सुना अर्चायें की, दर्शन कर चर्चायें की॥
लेकिन कहता अनुभव से, मुझ अबोध ने निश्चय से।
अंतस् तुम्हें बिठाया न, आत्मभाव से ध्याया ना॥
भक्ति शून्य आचार विमल, कभी ना देता मुक्ति फल।
इसीलिये दुःख पात्र बना, भव भव मेरा गात्र बना॥
रचनाकर मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ॥ 38॥

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हं णमो दुस्सहकट्ठणिवारयाणं खीरसवीणं।
मन्त्र-ॐ ह्रीं सर्वदुःखहराय श्री पार्श्वनाथजिनाय नमः।

प्रार्थना

त्वं नाथ! दुःखि-जनवत्सल! हे शरण्य!,
कारुण्य-पुण्य-वसते! वशिनां वरेण्य।
भक्त्या नते मयि महेश! दयां विधाय,
दुःखांकुरोद्-दलन-तत्परतां विधेहि।।

39

अन्वयार्थ -

त्वं नाथ	- हे नाथ! आप
दुःखिजनवत्सल	- हे दुखियों-पर प्रेम करने वाले।
हे शरण्य	- हे शरणागत प्रतिपालक!
कारुण्यपुण्यवसते	- हे दया की पवित्र भूमि!
वशिनाम् वरेण्य!	- हे जितेन्द्रियों में श्रेष्ठ! और
महेश	- हे महेश्वर!
भक्त्या	- भक्ति में
नते मयि	- नम्रीभूत मुझ पर
दयाम् विधाय	- दया करके
दुःखाङ्कुरोद्दलनतत्परताम्	- मेरे दुःखाङ्कुर के नाश करने में तत्परता-तल्लीनता
विधेहि	- कीजिये।

भावार्थ - हे दयालुदेव! आप दीनदयाल, शरणागत-प्रतिपाल, दयानिधान इन्द्रिय विजेता, योगीन्द्र और महेश्वर हैं अतः सच्ची भक्ति से नम्रीभूत मुझ पर दया करके मेरे दुखांकुरों के नाश करने में तत्परता कीजिये ॥ 39 ॥

सर्व ज्वर शामक

दुखी जनों के जन बान्धव हे! परमशरण आश्रयदाता।
हे करुणालय! पुण्यधाम हे, परम यतिवर शिर नाता॥
भक्ति भाव से नमन करें हम, रागद्वेष का गलन करो।
कृपादृष्टि बादल बरषा के, दुखांकुर का दलन करो॥ 39॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ।।
जन बन्धु! हे दीन दयाल! हे शरणागत सुप्रतिपाल!।
हे दुखियों के जनवत्सल! हे करुणालय! हे शुभथल!।।
इन्द्रिय जेता हे जिनवर! मनः विजेता हे मुनिवर!।
पारसनाथ महेश्वर हे! जिनवर नाथ जिनेश्वर हे!।।
भक्ति भाव से नमन करूँ, चरणों श्रद्धा सुमन धरूँ।
करुणालय! करुणा करके, दया भाव मुझ पर धरके।।
दलन करो दु:खांकर का, भव-भव के बीजांकुर का।
करो नाथ अंधेर नहीं, अब इसमें कुछ देर नहीं।।
रचनाकार मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ।। 39।।

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वज्वरसंतिकरणं सप्पिसवीणं।
मन्त्र-ॐ ह्रीं जगज्जीवदयालवे श्री पार्श्वनाथजिनाय नमः।

पश्चाताप-प्रतिक्रमण

नि:सख्य-सार-शरणं शरणं शरण्य-,
मासाद्य सादित-रिपु:-प्रथितावदानम्।
त्वत्पाद-पंकज-मपि प्रणिधान-वन्ध्यो,
वन्ध्योऽस्मि तद्-भुवनपावन! हा हतोऽस्मि॥

40

अन्वयार्थ -

भुवनपावन	-	हे संसार को पवित्र करने वाले भगवन्!
नि:सख्यसारशरणम्	-	सखा, भाई बन्धु से रहित मनुष्यों के प्रधान
शरणम्	-	रक्षा करने वाले
शरण्यम्	-	शरणागत प्रतिपालक और
सादितरिपुप्रथिता-वदानम्	-	कर्मशत्रुओं के नाश से प्रसिद्ध है, पराक्रम जिनका ऐसे
त्वत्पादपङ्कजम्	-	आपके चरण कमलों-को
आसाद्य अपि	-	पाकर भी
प्रणिधानवन्ध्य:	-	उनके ध्यान-से रहित हुआ मैं
वन्ध्य: अस्मि	-	अभागा-फलहीन हूँ, और
तत्	-	उसमें
हा	-	खेद है कि मैं
हत: अस्मि	-	नष्ट हुआ जा रहा हूँ। अर्थात् कर्म मुझे दु:खी कर रहे हैं।

भावार्थ - हे भुवनपावन! आपके अशरणशरण, शरणागत प्रतिपालक कर्मविजेता और प्रसिद्ध प्रभावशाली चरण-कमलों को प्राप्त करके भी यदि मैंने उनका चिन्तन नहीं किया तो मुझ सरीखा अभागा कोई नहीं ॥40॥

विषम ज्वर विघातक

निखिल विश्व के पावन कर्त्ता, संख्यातीत गुणागर हे!।
शरणागत के हे प्रतिपालक!, कर्मजयी सुखसागर हे!॥
हे प्रसिद्ध जगमहिमा वाले, पाकर के पद अवलम्बन।
चिन्तन् किया कभी ना मैंने, धिक्धिक्धिक् निष्फल जीवन॥ 40 ॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ।।
जग पावन कर्त्ता भगवन, गुण असंख्य धर्त्ता भगवन।
शरणागत आश्रयदाता, चरणागत प्राश्रय दाता।।
कर्म शत्रु के जेता हे!, मोक्ष मार्ग के नेता हे!।
हे प्रसिद्ध महिमा वाले, परम सिद्ध गरिमा वाले।।
तव चरणाम्बुज पा करके, भक्ति भाव मन ला करके।
चिन्तन मन्थन किया नहीं, जो गुण गुन्थन किया नहीं।।
अरे अभागा मैं ऐसा, हा! हा! जीवन मुझ जैसा।
धिक्–धिक् मैं तो मरा अरे! धरती पर क्यों धरा अरे।।
रचनाकर मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ।। 40।।

ऋद्धि–ॐ ह्रीं अर्हं णमो उण्हसीयबाहविणासयाणं मधुसवीणं।
मन्त्र–ॐ ह्रीं सर्वशान्तिकराय श्री पार्श्वनाथजिनाय नमः।

रक्षा करो परमात्मा

देवेन्द्रवन्द्य! विदिताखिल-वस्तुसार!
संसार-तारक! विभो! भुवनाधिनाथ!।
त्रायस्व देव! करुणाहृद! मां पुनीहि,
सीदन्त-मद्य भयदव्य-सनाम्बुराशेः।।

41

अन्वयार्थ –

देवेन्द्रवन्द्य – हे इन्द्रों के द्वारा वन्दनीय!

विदिताखिलावस्तुसार – हे सब पदार्थों के रहस्य को जानने वाले!

संसार-तारक – हे संसार-समुद्र से तारने वाले! विभो – हे प्रभो!

भुवनाधिनाथ – हे तीन लोक के स्वामिन्

करुणाहृद – हे दया के सरोवर!

देव – देव!

अद्य – आज

सीदन्तम् – तड़पते हुए, कष्ट पाते हुए

माम् – मुझको

भयदव्यसनाम्बुराशेः – भयङ्कर दुःखों के समुद्र से

त्रायस्व – बचाओ, और

पुनीहि – पवित्र करो।

भावार्थ – हे देवेन्द्रवंद्य सर्वज्ञ!, जगततारक!, त्रिलोकीनाथ!, दयासागर!, जिनेन्द्रदेव! आज मुझ दुखिया की रक्षा करो तथा अतिभयानक दुख सागर से बचाओ ॥41॥

अस्त्र-शस्त्र विघातक

देवों द्वारा वन्दनीय हे! विश्व तत्त्व के ज्ञाता हो।
तारणतरण जिनेश्वर तुम ही, जीव मात्र के त्राता हो॥
मैं दुखियारा दुख से पीड़ित, दुख सागर से पार करो।
दयामूर्ति हे करुणा सागर, मेरा भी उद्धार करो॥ 41॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ।।
वन्दनीय देवों द्वारा, अर्चनीय इन्द्रों द्वारा।
अखिल विश्व के ज्ञाता हे!, हे सर्वज्ञ! विधाता हे!।।
पृथ्वी के हर कण-कण के, भूत भविष्यत इस क्षण के।
वस्तुसार को जान रहे, केवल बोध प्रमाण रहे।।
भव सागर के तारक हे! जगती के उद्धारक हे!।
आज बचाओ आकर के, इस अपार भव सागर से।।
दुखिया के दु:ख दूर करो, सुखिया! सुख भरपूर करो।
पार्श्वनाथ हे जीवन धन! पावन कर दो मम जीवन।।
रचनाकार मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ।। 41।।

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हं णमो वप्पलाहकारयाणं अमइसवीणं।
मन्त्र-ॐ ह्रीं जगन्नायकाय श्री पार्श्वनाथजिनाय नम:।

सदा सर्वत्र आपशरण

यद्यस्ति नाथ! भवदंघ्रि-सरोरुहाणां,
भक्तेः फलं किमपि सन्तत-सञ्चितायाः।
तन्मे त्वदेक-शरणस्य शरण्य! भूयाः,
स्वामी त्वमेव भुवनेऽत्र भवान्तरेऽपि॥

42

अन्वयार्थ -

नाथ	-	हे नाथ!			
त्वदेकश्णस्य, मे	-	केवल आप ही की है शरण जिसको ऐसे मुझे			
सन्ततसञ्चितायाः	-	चिरकाल से सञ्चित-एकत्रित हुई			
भवदंघ्रिसरोरुहाणां	-	आपके चरण कमलों की			
भक्तेः	-	भक्ति का	यदि	-	यदि
किमपि फलम् अस्ति	-	कुछ फल हो	तत्	-	तो उससे
शरण्य	-	हे शरणागत प्रतिपालक!			
त्वम् एव	-	आप ही	अत्र भुवने	-	इस लोक में और
भवान्तरे अपि	-	पर लोक में भी	स्वामी	-	मेरे स्वामी
भूयाः	-	होवें।			

भावार्थ - हे नाथ! आपकी स्तुति कर मैं आपसे अन्य किसी फल की चाह नहीं रखता, केवल यही चाहता हूँ कि भव-भवान्तरों में सदा आप ही मेरे स्वामी रहें, जिससे कि मैं आपको अपना आदर्श बनाकर अपने को आपके समान बना सकूँ ॥42॥

स्त्री रोग नाशक

प्रभो! आपके चरण कमल की, पूजन आराधन अविरल।
पुण्य कोष जो पाया हमने, करके भक्ति भाव विमल॥
यदि कुछ भी फल देते सचमुच, परम शरण शिवगामी हो।
जन्म-जन्म तक दास रहूँ मैं, आप हमारे स्वामी हों॥ 42 ॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ।।
तुम ही एक सहारे हो, पारसनाथ हमारे हो।
तव चरणों का चेरा मैं, करता चरण बसेरा मैं।।
प्रभो चरणों की भक्ति का, भावों संचित शक्ति का।
यदि कुछ भी फल फलता है, लाभ यदि कुछ मिलता है।।
धन वैभव की प्यास नहीं, परभव सुख की आस नहीं।
केवल इतना दान करो, वरद प्रभो वरदान वरो।।
आप हमारे स्वामी हों, नयनों के पथगामी हों।
जन्म-जन्म तक साथ रहे, तव पद मेरा माथ रहे।।
रचनाकर मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ।। 42।।

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हं णमो इत्थित्तरोअणसयाणं अक्खीणमहाणसाणं।
मन्त्र-ॐ ह्रीं अशरणशरणाय श्री पार्श्वनाथजिनाय नमः।

स्तुति फल

इत्थं समाहित-धियो विधिवज् - जिनेन्द्र!
सान्द्रोल्-लसत्-पुलक-कञ्चु-किताङ्ग-भागाः।
त्वद्-बिम्ब-निर्मल-मुखाम्बुज-बद्ध-लक्ष्याः,
ये संस्तवं तव विभो! रचयन्ति भव्याः॥

43

अन्वयार्थ -

जिनेन्द्र विभो! - हे जिनेन्द्र देव!
ये भव्याः - जो भव्यजन
इत्थम् - इस तरह
समाहितधियाः - सावधान बुद्धि से युक्त हो
त्वद्बिम्बनिर्मल-मुखाम्बुजबद्धलक्ष्याः - आपके निर्मल मुख-कमल पर बाँधा है लक्ष्य जिन्होंने ऐसे तथा
सान्द्रोललसत्पुलक-कंचुकिताङ्गभागाः - सघनरूप से उठे हुए रोमांचों से व्याप्त हैं शरीर के अवयव जिनके ऐसे
सन्तः - होते हुए
विधिवत् - विधिपूर्वक
तव - आपका
संस्तवम् - स्तवन
रचयन्ति - रचते हैं।

भावार्थ - हे जितेन्द्रिय जिनेश्वर! जो भव्यजन उपरोक्त प्रकार से प्रमादरहित होकर आपके दैदीप्यमान मुखारविन्द की ओर टकटकी लगाकर और सघन तथा उठे हुए रोमांचरूपी वस्त्र पहिनकर विधिपूर्वक आपकी स्तुति रचते हैं।

बंधन मोचक

इस प्रकार आराधन करते, सम्यग्दर्शन धी वाले।
इकटक तेरे मुखमण्डल को, सदा निहारें मति वाले॥
अंग-अंग से पुलकित होकर, भरे हुये उल्लासों से।
विधि विधान से संस्तुति रचते, आती-जाती श्वाँसों से॥ 43॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ।।
निश्चल हो उपयोगों से, शुद्ध भाव शुभ योगों से।
मंजु मनोहर मुखमण्डल, देख रहे हैं मन मंगल।।
बाँध-बाँध कर निजमन को, प्रभो! आपके आनन को।
वह अनिमेष विलोक रहे, नयनों से अवलोक रहे।।
भरे हुए उल्लासों से, रोम-रोम हर श्वासों से।
अंग-अंग पुलकित होकर, अन्तःकरण मुदित होकर।।
विधि-विधान अपना करके, मन में तुम्हें समाकर के।
तेरा संस्तव रचते हैं, मंदिर-गीता भजते हैं।।
रचनाकार मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ।। 43।।

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हं णमो बंदिमोअगाणं सव्वसिद्धायदणाणं।

मन्त्र-ॐ ह्रीं नट्ठट्ठमयट्ठाणे, पणट्ठकम्मट्ठनट्ठसंसारे। परमट्ठनिट्ठिअट्ठे अट्ठगुणाधीसरं वंदे॥

स्तुति फल-उपसंहार

जन-नयन-कुमुद-चन्द्र,
प्रभास्वराः स्वर्ग-सम्पदो-भुक्त्वा।
ते विगलित-मल-निचया,
अचिरान् मोक्षं प्रपद्यन्ते।।

44

अन्वयार्थ -

जननयनकुमुदचन्द्र	-	हे प्राणियों के नेत्र रूपी कुमुदों-कमलों को विकसित करने के लिये चन्द्रमा की तरह शोभायमान देव! आपके आराधक
ते	-	वे
प्रभास्वराः	-	दैदीप्यमान
स्वर्गसम्पदः	-	स्वर्ग की सम्पत्तियों को
भुक्त्वा	-	भोगकर
विगलितमलनिचयाः संतः	-	कर्मरूपी मल-समूह से रहित हो
अचिरात्	-	शीघ्र ही
मोक्षं	-	मोक्ष को
प्रपद्यन्ते	-	प्राप्त कर लेते हैं।

भावार्थ - वे भव्य देवलोक की सुखकर विविध सम्पत्तियों को भोग कर अष्टकर्म रूपी मल को आत्मा से दूर कर अविलम्ब अविनाशी मोक्ष सुख पाते हैं ॥44॥

वैभव वर्द्धक

जीव मात्र के नयन कुमुद को, कुमुद चन्द्र पारस भगवन।
तेरी संस्तुति रचने वाले, पा जाते हैं स्वर्ग सदन॥
स्वर्ग सम्पदा भोग भोगकर, भव्य मनुज तन पाते हैं।
अष्ट कर्मदल नष्ट करें वह, मुक्ति 'विभव' पा जाते हैं॥ 44॥

पार्श्वनाथ के चरणकमल को, मन मंदिर में ध्याता हूँ।
प्रभु के आराधन वन्दन में, मंदिर गीता गाता हूँ॥
आँखों के जो तारे हैं, लगते प्यारे-प्यारे हैं।
चन्द्र बिम्बवत् कमलों को, कुमुदचन्द्र मन अमलों को॥
चित् चैतन्य गुणेश्वर की, क्षमा मूर्ति तीर्थेश्वर की।
पारसनाथ जिनेश्वर की, पुण्य प्रताप यशेश्वर की॥
संस्तुति को रचने वाले, मन वच, तन, भजने वाले।
भक्त अमर बन जाते हैं, स्वर्ग सम्पदा पाते हैं॥
भव्य मनुज तन पाकर के, रत्नत्रय अपनाकर के।
कल्मष कोश नशाते हैं, मुक्ति विभव पद पाते हैं॥
रचनाकार मुनि कुमुदचन्द्र के, शब्द, अर्थ, मन लाता हूँ।
अभिनन्दन कर, सद्भक्तों को, कण्ठाभरण बनाता हूँ॥ 44॥

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हं णमो अक्खय सुहदायगस्स वड्ढमाणबुद्धिरिसिस्स।

मन्त्र-ॐ परमशांतिविधायकाय श्री पार्श्वनाथ जिनाय नमः।

॥ इति श्री अभीप्सित कार्य सिद्धिदायक कल्याणमन्दिर स्तोत्रम्॥

'कल्याण' 'मन्दिर' 'व्रत' 'विधि'

प्रस्तुति-गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी

कल्याण मन्दिर स्तोत्र भगवान पार्श्वनाथ का स्तोत्र है। इसमें भी आदि में ''कल्याणमंदिरमुदारमवद्यवेदि'' है।

अतः स्तोत्र के प्रारंभ में 'कल्याण मन्दिर' आ जाने से इसका कल्याणमंदिर स्तोत्र यह सार्थक नाम हो गया है। इसमें 44 काव्य हैं। अतः 44 व्रत किये जाते हैं। व्रत के दिन श्री पार्श्वनाथ का अभिषेक करके कल्याण मन्दिर यंत्र का भी अभिषेक करें और कल्याण मन्दिर की पूजा या श्री पार्श्वनाथ की पूजा करें।

इसकी समुच्चय जाप्य निम्न प्रकार हैं -

ॐ ह्रीं कमठोपसर्गजिताय श्री पार्श्वनाथाय नमः।

प्रत्येक व्रत के पृथक्-पृथक् मंत्र - (एक-एक व्रत के दिन क्रम से 1-1 मंत्र की माला फेरें।)

1. ॐ ह्रीं भवसमुद्रतरणे पोतायमानकल्याणमंदिरस्वरूपाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
2. ॐ ह्रीं कमठस्य धूमकेतूपमाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
3. ॐ ह्रीं त्रैलोक्याधीशाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
4. ॐ ह्रीं सर्वपीड़ानिवारकाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
5. ॐ ह्रीं सुखविधायकाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
6. ॐ ह्रीं अव्यक्तगुणाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
7. ॐ ह्रीं भवाटवीनिवारकाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
8. ॐ ह्रीं कर्माहिबन्धमोचनाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
9. ॐ ह्रीं सर्वोपद्रवहरणाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
10. ॐ ह्रीं भवोदधितारकाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
11. ॐ ह्रीं हुतभुग्भयनिवारकाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
12. ॐ ह्रीं हृदयधार्यमाणभव्यगणतारकाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
13. ॐ ह्रीं कर्मचौरविध्वंसकाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
14. ॐ ह्रीं हृदयाम्बुजान्वेषिताय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
15. ॐ ह्रीं जन्ममरणरोगहराय श्री पार्श्वनाथाय नमः।

16. ॐ ह्रीं विग्रहनिवारकाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
17. ॐ ह्रीं आत्मस्वरूपध्येयाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
18. ॐ ह्रीं परवादिदेवस्वरूपध्येयाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
19. ॐ ह्रीं अशोकप्रतिहार्योपशोभिताय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
20. ॐ ह्रीं पुष्पवृष्टिप्रातिहार्योपशोभिताय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
21. ॐ ह्रीं अजरामरदिव्यध्वनिप्रातिहार्योपशोभिताय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
22. ॐ ह्रीं चामरप्रातिहार्योपशोभिताय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
23. ॐ ह्रीं सिंहासनप्रातिर्होपशोभिताय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
24. ॐ ह्रीं भामण्डलप्रातिहार्यप्रभास्वते श्री पार्श्वनाथाय नमः।
25. ॐ ह्रीं दुन्दुभिप्रातिहार्योपशोभिताय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
26. ॐ ह्रीं छत्रत्रयप्रातिहार्यविराजिताय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
27. ॐ ह्रीं पीठत्रयविराजिताय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
28. ॐ ह्रीं पुष्पमालानिषेवितचरणाम्बुजाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
29. ॐ ह्रीं संसारसागरतारकाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
30. ॐ ह्रीं अद्भुतगुणविराजितरूपाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
31. ॐ ह्रीं श्री रजोवृष्टयक्षोभ्यास श्री पार्श्वनाथाय नमः।
32. ॐ ह्रीं कमठदैत्यमुक्तवारिधाराक्षोभ्याय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
33. ॐ ह्रीं परवादिदेवस्वरूपध्येयाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
34. ॐ ह्रीं त्रिकालपूजनीयाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
35. ॐ ह्रीं आपन्निवारकाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
36. ॐ ह्रीं सर्वपराभवहरणाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
37. ॐ ह्रीं सर्वमनर्थमथनाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
38. ॐ ह्रीं सर्वदुःखहराय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
39. ॐ ह्रीं जगज्जीवदयालवे श्री पार्श्वनाथाय नमः।
40. ॐ ह्रीं सर्वशांतिकराय श्रीजिनचरणाम्बुजाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
41. ॐ ह्रीं जगन्नायकाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
42. ॐ ह्रीं अशरणशरणाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
43. ॐ ह्रीं चित्त समाधि सुसेविताय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
44. ॐ ह्रीं परमशांतिविधायकाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।

'अखण्ड' 'पाठ' 'की' 'विधि'

आत्मा को पवित्र एवं परमात्मा बनाने के लिए पवित्र गुणों का नित्य चिन्तन, मनन एवं स्तवन करना चाहिए। अपने आत्मगुणों को व्यक्त करने का प्रयास करना चाहिए। अपनी अन्तर्भावना को व्यक्त करने के लिए भक्तामर स्तोत्र एवं कल्याण मन्दिर स्तोत्र के द्वारा परम परमात्मा की आराधना से और संसारी प्राणियों के हित के लिए, भगवान के सामने भक्तामर एवं कल्याण मन्दिर के (अखण्ड पाठ) की क्रम या विधि कही गई है -

पाठ प्रारम्भ करने के पहले एक चौकोर तख्त पर चावल या अन्य पांच अनाज से मण्डल बनाया जाय। दूसरे दिन शुद्ध वस्त्र पहनकर शुद्ध सामग्री तैयार करें। पश्चात् मंडल के ऊपर पूर्व या उत्तर मुख से सिंहासन पर भगवान को विराजमान करें। मंडल की शोभा बढ़ाने के लिए छत्र चामर लगायें और अष्ट मंगल द्रव्य, अष्ट प्रातिहार्य स्थापित करें।

प्रतिमा की दायीं तरफ अखण्ड दीपक जलायें पांच मंगल कलश की स्थापना करें। मंगल कलशों में हल्दी, सुपारी, सवा रुपया सरसों डालकर सीधा श्रीफल लाल या पीला वस्त्र बांधकर रखें। चार कलश चारों कोनों पर रखें एवं मंगल कलश प्रतिमा की बाई तरफ रखें। पश्चात् दिग्बंधन कर रक्षासूत्र बांधे मंडल पर दश दिग्पालों के अर्घ चढ़ाकर भगवान का अभिषेक करें पश्चात् शान्तिधारा करें।

तदनन्तर नित्य पूजन के पश्चात् 24, 48, 72 घंटे तक अखण्ड पाठ करने का संकल्प करें और जय जयकार के पश्चात् कल्याण मन्दिर स्तोत्र का पाठ प्रारम्भ करें। अखण्ड पाठ प्रतिमा के सामने ही बैठकर करें एक स्वर से पाठ का उच्चारण करें। संकल्पित समय पूर्ण होने पर मंगलाष्टक तथा भगवान का अभिषेक शान्तिधारा पश्चात् भगवान को पुनः विराजमान करें, विधिपूर्वक नित्य नियम पूजा पश्चात् कल्याण मन्दिर विधान की पूजा करें। पूजन समाप्ति के बाद पंचम मंगल कलश से (पुण्याह्वाचन) शान्ति-विसर्जन, आरती, परिक्रमा यथाविधि करें। अगर पाठ के साथ जाप किया है तो विधिपूर्वक हवन भी करें।

आचार्य विभवसागर जी महाराज के संघस्थ दीक्षित-साधुगण

क्र.	साधुगण	दीक्षा तिथि
	श्रमण विभास्वरसागर जी महाराज	**गुरु-आचार्य विरागसागर जी**
1.	श्रमण आचरणसागर जी महाराज	10.02.2011, हटा (म.प्र.)
2.	श्रमण अध्ययनसागर जी महाराज	04.12.2014, सागर (म.प्र.)
3.	श्रमण आवश्यकसागर जी महाराज	04.12.2014, सागर (म.प्र.)
4.	श्रमण अध्यापनसागर जी महाराज	04.12.2014, सागर (म.प्र.)
5.	श्रमण अर्हंतसागर जी महाराज	04.12.2014, सागर (म.प्र.)
6.	श्रमण आचारसागर जी महाराज	04.12.2014, सागर (म.प्र.)
7.	श्रमण शुद्धात्मसागर जी महाराज	16.02.2018, श्रवणबेलगोला (कर्नाटक)
8.	श्रमण सिद्धात्मसागर जी महाराज	16.02.2018, श्रवणबेलगोला (कर्नाटक)
9.	श्रमणी अर्हंश्री माताजी	14.04.2016, शिखरजी (झारखण्ड)
10.	श्रमणी ओम् श्री माताजी	14.04.2016, शिखरजी (झारखण्ड)
11.	श्रमणी समिति श्री माताजी	16.02.2018, श्रवणबेलगोला (कर्नाटक)
12.	श्रमणी संस्कृत श्री माताजी	16.02.2018, श्रवणबेलगोला (कर्नाटक)
13.	श्रमणी संस्कृति श्री माताजी	16.02.2018, श्रवणबेलगोला (कर्नाटक)
14.	श्रमणी ह्रीं श्री माताजी	18.11.2015, भिलाई (छ.ग.)
15.	क्षुल्लिका आराधना श्री माताजी	17.01.2016, राजिम (छ.ग.)
16.	क्षुल्लिका सिद्धश्री माताजी	16.11.2016, जैतहरी (म.प्र.)
17.	क्षुल्लिका संस्तुति श्री माताजी	16.02.2018, श्रवणबेलगोला (कर्नाटक)

क्र.	समाधिस्थ साधुगण	समाधि तिथि
1.	श्रमण अध्यात्म सागर जी	2015, दुर्ग (छ.ग.)
2.	श्रमण अनशन सागर जी	2017, शिरड, शहापुर (महा.)
3.	श्रमण समाधिसागर जी महाराज	07.07.2018, मुम्बई (महा.)
4.	श्रमणी विनिर्मला श्री माताजी	2007, नागपुर (महा.)
5.	श्रमणी प्राज्ञा श्री माताजी (आचार्य श्री की माँ)	2018, बगरोही (म.प्र.)
6.	क्षुल्लिका विदेह श्री माताजी	2001, कोतमा (म.प्र.)
7.	क्षुल्लिका अनुकम्पा श्री माताजी	2011, सागर (म.प्र.)
8.	क्षुल्लिका अर्हद् श्री माताजी	2014, सागर (म.प्र.)

स्मरण बिन्दु

स्मरण बिन्दु

स्मरण बिन्दु

सारस्वत श्रमण नय चक्रवर्ती श्रमणाचार्य
108 श्री विभवसागर जी महाराज

पूर्व नाम	पण्डित अशोक कुमार जी जैन शास्त्री
जन्मस्थान	किसनपुरा (सागर) म.प्र.
जन्मतिथि	कार्तिक कृष्ण अमावस्या 2033 तदनुकूल 23 अक्टूबर 1976
पिता	श्रावकरत्न श्री लखमीचन्द्र जैन
माता	श्राविकारत्न श्रीमती गुलाबबाई जैन
शिक्षा	संस्कृत शास्त्री प्रथम वर्ष (इण्टर)
धार्मिक शिक्षा	धर्मशास्त्री द्वितीय वर्ष
शिक्षण संस्थान	श्री गणेशवर्णी दिगम्बर जैन महाविद्यालय मोराजी सागर म.प्र.
वैराग्य	9 अक्टूबर 1994 को ब्र. व्रत लिया
क्षु. दीक्षा	28 जनवरी 1995 मंगलगिरि सागर म.प्र.
ऐलक दीक्षा	23 फरवरी 1996 देवेन्द्रनगर (पन्ना) म.प्र.
मुनि दीक्षा	14 दिसंबर 1998 अतिशय क्षेत्र बरासौ भिण्ड म.प्र.
दीक्षा गुरु	गणाचार्य 108 श्री विरागसागर जी महाराज
आचार्य पद	31 मार्च 2007 औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
विशेष	जैन आगम रुपी मानसरोवर के राजहंस की तरह झलक देने वाले प्रज्ञाश्रमण की प्रवचन शैली जन-जन द्वारा हृदयग्राह्य है।
कृतियाँ	अभी तक आचार्य श्री द्वारा 62 कृतियों की सृजना की गई है।
अलंकरण	" सारस्वत-श्रमण ", " सारस्वत-कवि " एवं " शास्त्र-कवि "